हाड़ौती :
साहित्य और स्वरूप

साहित्य और स्वरूप

डॉ कन्हैयालाल शर्मा

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

भूमिका

अपनी पी एच० डी० उपाधि की शोध-यात्रा के काल म जब कभी सास लेन का समय मिलता था तब उन क्षणा का उपयोग भी मैं लिखने के लिए कर लेता था। उस काल की लिखी रचनाग्रा के साथ साथ उसके पूव और उत्तर कालो म हाडौती विषया पर जो कुछ मैंने लिखा है उनका सग्रह हाडौती साहित्य और स्वरूप मरे अनुवरत चिन्तन का फल है।

किसी को अपना बचपन अच्छा लगता है और किसी को अपना घर। जब हम इन दोना से दूर हो जाते हैं तब इनकी मिठास और बढ जाता है। किसी बोली और उनके लोक साहित्य के सम्बन्ध मे भी यही सत्य है। काल के चरणो के साथ बढकर जब हम राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हो गए हैं, तब एक बार पीछे मुडकर देखने की इसलिए इच्छा होती है कि ऐसा करने से सुख मिलता है और अपन बचपन और घर की प्राप्ति का सा आनन्द मिलता है।

पर यदि इतना भर ही उद्देश्य बोली और लोक साहित्य के अध्ययन का होता तो कदाचित बुद्धिवादी मनुष्य इसे व्यथ का श्रम समझकर कभी का इससे विमुख हो गया होता। सम्भवत वह यह भी मानता है कि अतीत को समझे बिना वतमान और भविष्य को समझना दुष्कर है खण्ड को समझे बिना पूण को नही समझा जा सकता, व्यष्टि को समझे बिना समष्टि को समझना असम्भव है और लघु को समझकर ही वृहत् तक पहुँचा जा सकता है। अत ऐसे अध्ययनो की दिशा काल विशेष मे सवकाल खण्ड से अखण्ड व्यष्टि से समष्टि और लघु से वृहत् की ओर होती है। प्रस्तुत क्षेत्रीय विषया के अध्ययन मे मेरी यही दृष्टि रही है।

हाडौती क्षेत्र की भौगोलिकता कुछ एसी है कि जो उसे पश्चिमी राजस्थान से तो पृथक करती ही है, वह उसे ब्रज प्रदेश म भी पृथक किए हुए है और मालवा से भी दुगमतावश वह असपृक्त है। मरुप्रदेश, ब्रज और मालवा के मध्य म होने से उसका एक विशिष्ट अस्तित्व व्यक्तित्व है जो उसकी बोली और

लोक साहित्य म व्यक्त हुआ है। उसका वह ऐसा वनिष्ठ्य है जो उसे एक ओर तो सुदूर गुजरात स जोड़ हुए है और दूसरी ओर उसका मध्य व ब्रज क्षत्र से है तथा वह पश्चिमी राजस्थान स भी भिन्न नहीं है। अत उसकी बोली का स्थानिक और रूपगत विशिष्टताओ न मुझ आकर्षित किया है। उसके लोक साहित्य का वनिष्ठ्य उस देश क लोक मानस से संपृक्त किय हुए है। अत प्रकारान्तर से ऐसा अध्ययन एक सांस्कृतिक अध्ययन बन जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक श्री सूयप्रकाश बिस्सा व निदेशक, व्यवस्थापक सूय प्रकाशन मन्दिर बीकानेर, राजस्थान क सुदूर उत्तर क निवासी हैं जिन्होने उसके सुदूर दक्षिण की हाड़ौती बोली और उसके साहित्य विषयक हाड़ौती साहित्य और स्वरूप पुस्तक का प्रकाशन करके भी अध्ययन प्रेरणा को पुष्ट बनाया है और अपनी सुसंस्कृत रुचि का परिचय दिया है। अत इस सांस्कृतिक महदनुष्ठान म उनके सहयोग क लिए मैं उनको साधुवाद देता हू।

जनवरी ७३
स्वाधीनता रजत जयन्ती वष

डा० कन्हैयालाल शर्मा
अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
डूगर महाविद्यालय बीकानेर

अनुक्रम

हाडौती बोली का स्वरूप

हाडौती शब्द की उत्पत्ति हाडा शब्द से हुई है। हाडौती उस भू भाग की बोली है जिस पर चौहान वंश की शाखा—हाडा राजपूतों का शताब्दियों तक अधिकार रहा है। हाडा हाडौती प्रदेश में प्रमुख रूप से बसे निवासी[1] नहीं हैं, अपितु यहाँ के शासक रहे हैं। उन्हीं के नाम पर बने 'हाडौत'[2] से उसी प्रकार 'हाडौती' शब्द बना है जिस प्रकार शेखावत से शेखावाटी और तोरावत से तोरावाटी।

डा० ग्रियसन ने हाडौती बोली के क्षेत्र को इतना विस्तार दिया है कि 'सीपरी' को भी उसी के अंतर्गत स्वीकार कर लिया है पर यह हाडौती से भिन्न बोली है।[3] हाडौती वर्तमान कोटा व बूंदी जिलों तथा झालावाड जिले के उत्तरी भाग की प्रमुख बोली है। कोटा जिले की शाहबाद व किशनगंज तहसीलों के पूर्वी भाग के निवासी हाडौती भाषी नहीं हैं और बूंदी जिले की इन्द्रगढ और नैनवा तहसीलों के उत्तरी भाग भी इस बोली के क्षेत्र से बाहर हैं। इस प्रकार हाडौती विशाल भू भाग की बोली है जिसके बोलने वालों की संख्या सन १९६१ की जनगणना के अनुसार ८,६१,०३४ है।[4]

प्रति बारह कोस पर बोली बदलती है—की मान्यता के अनुसार इतने विशाल भूमाग की बोली में सर्वत्र एकरूपता नहीं पाई जाती है। तत्कालीन कोटा और बूंदी के राज्य क्रमशः दक्षिणी हाडौती और उत्तरी हाडौती की सीमा बनाते हैं। हाडौती के दोनों रूपों में इस प्रकार अन्तर मिलता है—

---

१ ग्रियसन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग २ पृ २०३।

२ हाडौत शब्द काल्पनिक है और इसकी उत्पत्ति हाडा-पुत्र हाडा [illegible] [illegible] हाडौत से हुई है। इसकी कल्पना का आधार रामसिंहत प्राणि शब्द [illegible] है [illegible] क्षत्रीय जाति में परम्परागत है।

३ देखिये—हाडौती बोली और साहित्य बोली खण्ड पृ १०।

४ सेन्सस ऑफ इंडिया १९६१ पृ० ८४।

१ उत्तरी हाड़ौती म पुरुषवाचक सवनामा मे उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष म मे' और 'ते रूप प्राय सुनाई पडते है जो दाना वचना म प्रयुक्त होते हैं, पर अन्वित क्रिया सदव बहुवचन मे रहती है। दक्षिणी हाड़ौती म म्हूँ तू या थू एकवचनीय रूप है और म्हां, थां बहुवचन क रूप हैं जो उत्तरी हाड़ौती क्षत्र म भी प्रयुक्त होत हैं।

२ दक्षिणी हाड़ौती के सामान्य भविष्यत के रूप क्रिया क वतमान निश्चयाथ के साथ ग प्रत्यय जोडने से सम्पन्न होते हैं पर उत्तरी हाड़ौती के एसे रूप धातु शब्दो के साथ सी प्रत्यय क योग से सम्पन्न होते हैं यथा — तू जावगी (दक्षिणी हाड़ौती) और तू जासी (उत्तरी हाड़ौती)।

३ दक्षिणी हाड़ौती क स्थानवाचक क्रिया विशपण म्हां ज्या खां आदि हैं और स्थान सकेतवाचक क्रिया विशपण अठी कठी आदि है। उत्तरी हाड़ौती म इनके स्थान पर उठ, वठ आदि प्रयुक्त होते हैं।

हाड़ौती बोली की ध्वनिगत और रूपात्मक कुछ प्रमुख विशषताएँ इस प्रकार हैं—

१ ध्वनिगत विशेषताएँ

(क) स्वरगत विशषताए—

१ हाड़ौती बोली म आठ स्वर प्रयुक्त होते हैं। वे हैं—अ अ[१] आ ई, उ, ऊ ए तथा ओ। इन स्वरो मे अ अद्ध सवत दीघ मध्यस्वर है जा आ' विवत, दीघ मध्य स्वर से भिन्न हैं। इसे ह्रस्व अ का दीघ रूप कहा जा सकता है। अ को आ का ह्रस्व रूप व्याकरणिक आवश्यकता से माना है।[२] अ शब्द के आदि मे प्रयुक्त नही होता है और न स्वतन्त्र रूप स ही शब्द मे प्रयुक्त होता है।

---

१ उपयु क्त लिपि चिह्न के अभाव मे   सकेत से काम लिया गया है।

२ (क) यदि ह्रस्व अ को दीघ आ से इस दिशा म भिन्न समझा जाता तो तुल्यास्य प्रयत्न सवणम् (१ १ ९) बाधित हो जाता और उक्त सूत्रगत एकरूपता समाप्त हो जाती। ह्रस्व अ को अपना स्वाभाविक अधिकार जो अब तक पाणिनि अष्टाध्यायी मे बाधित था दिलाने के लिए वे अ अ इति (८ ४ ६८) सूत्र की सष्टि करते हैं जिसस तात्पर्य यह है कि अब जब पुस्तक समाप्ति पर है तब ह्रस्व अ को सवत मानना चाहिए जिस अब तक आवश्यकतावश विवत माना गया था।

—डा० वासुदेव श्रीशचन्द्र वसु सिद्धान्त कौमदी प ११

(ख) इस लेख म   लिपि चिह्न को सवत अ दीघ मध्य स्वर का मात्रा चिह्न पढ़ा जाना चाहिए।

२ हाडौती म 'इ', 'ऐ' तथा 'औ[1] स्वरों का प्रयोग नहीं मिलता है, यथा—आम्ली (हि० इमली) अस्यो (हि० ऐसा) तथा बोरत (हि० औरत)। हाडौती में इ' स्वर का एकात लोप उसकी एसी विशेषता है जो उस अय राजस्थानी बोलियों से पृथक कर देती है जस—हा० मतख मारवाडीमिनख।

३ अ' स्वर का उच्चारण असयुक्त अत्य व्यजन के साथ तथा दीघ स्वरों के मध्य मे नहीं होता है (यद्यपि लिखा जाता है), यथा—रागस, वैल छापक्‍ो (चाबुक), तोडरा।

४ हाडौती म स्वर-सकोच की प्रवत्ति आधुनिक भारतीय आयभाषाओ की अपेक्षा अधिक विकसित है, यथा— ग्हा (हि० यहा) ग्या (हि० गया), बोतार (हि० अवतार)।

५ हाडौती स्वर ध्वनियो में अकारण अनुनासिकता क अनेक उदाहरण मिलते हैं यथा—घास (हि० घास) राक्स (हि० राक्स), काचु (हि० काच) दत (दत्य)।

(ख) व्यजनगत विशेषताएँ—

१ हाडौती म प्रयुक्त ३६ व्यजन ध्वनियो मे ळ तथा व् एसे व्यजन हैं जो हिन्दी म प्रयुक्त नही होत हैं पर राजस्थानी बोलियो म मिलते हैं। हाडौती का ळ अल्पप्राण, सघोष उत्क्षिप्त पार्श्विक, मूर्धन्य व्यजन है और इसका व्यवहार शब्द के आदि म नही होता है। चाळीस म्हाळो आदि शब्दो म यह प्रयुक्त होता है। व ' व्यजन द्वयोष्ठ्य सघोष अर्द्धस्वर है और इसका उच्चारण अग्रेजी व्ही के समान होता है। इसका प्रयोग बहुत कम शब्दो म होता है, यथा—वाने ल्वारी (लुहारी)।

२ हाडौती अनुनासिक व्यजनो म 'ङ का स्वतन्त्र रूप म प्रयोग नहीं होता है और न शब्द क आदि म यह प्रयुक्त होता है, यथा—जङत (युद्ध) नङ्ग घडङग (नग्न)। ञ' हाडौती क वक्खा (व्यजन माला) मे तो स्वीकृत है— ञना (अञ्जो) माडो चन्द्रमा पर इसका प्रयोग सयुक्त या असयुक्त व्यजन के रूप मे किसी भी शब्द म नही सुना जाता है।

३ हाडौती म मध्य व्यजन-सयोग क विविध रूप मिलते हैं पर आदि व्यजन सयोग म उत्तर व्यजन अर्द्धस्वर होता है फ्याळो (पहलिका) स्याळी (शलली) फ्वारो (फव्वारा)।

४ हाडौती म महाप्राण ध्वनि शब्द म एक ही बार प्रयुक्त होती है (अनुकरणात्मक शब्द इसके अपवाद हैं) और वह शब्द क आदि की ओर बढन की प्रवत्ति अपनाय हुए है यथा—हाती (हि० हाथी) म्हाँ (हि० कहाँ) सज्या

---

[1] यद्यपि हाडौती शब्द में यह स्वर है।

या साज् (सध्या), फावणू (हि० पाहुन)। अनेक शब्दों में अकारण महाप्राणता भी पाई जाती है यथा—फाणी (हि० पानी), छापको (हि० चाकू)।

२ रूपगत विशेषताएँ

१ हाडौती शब्द रचना में 'ड'- प्रत्यय का बडा महत्त्व है। यह स्वार्थे प्रत्यय शब्द की प्रियता घृणा या लघुता सूचकता में प्रयुक्त होता है जसे—मुख्डो (मुख), हारडो (हार)। कहीं कहीं इसके स्थान पर ट प्रत्यय भी प्रयुक्त होता है यथा —तेल्टो (तेली) बलाव्टो (बलाव)।

वस्तुत ये दोनो प्रत्यय एक दूसरे के रूपान्तर हैं। प्राकृत में प्रयुक्त -ट प्रत्यय राजस्थानी में 'ड' भी बन गया है। अपभ्रंश में प्रयोग की बहुलता थी[1]।

२ हाडौती सज्ञा शब्दों के एकवचन पुल्लिग रूपो की विशेषता उनकी ओकारान्तता है जसे—घोडो, छोरो फापो (पर का अग्र भाग)। यह विशेषता समस्त राजस्थानी बोलियो में मिलती है तथा ब्रजभाषा में भी पाई जाती है। हाडौती सज्ञा शब्द तो विभिन्न स्वरान्त या व्यजनान्त हो सकते हैं पर सप्रत्यय गुण वाचक विशेषणो में यह प्रवृत्ति नियमित है यथा—काळो घोडो धोळो बल रातो तेली।

३ हाडौती में दो लिंग होते हैं—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। यदि सज्ञा शब्दों की ओकारान्तता पुल्लिग की द्योतक है तो उनकी ईकारान्तता स्त्रीलिंग की द्योतक है पर कत वाचक पुल्लिग शब्द ईकारान्त होते हैं, यथा—तेली, माळी। हाडौती का प्रमुख स्त्री प्रत्यय ई है जसे—बादरा बादरी स्वाळ्यो-स्वाळी। अण-आणी आई प्रत्यय भी पुल्लिग शब्दों से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं यथा—मोग्यो मोगण पडत पडताणी लोग लुगाई। शेष वण णी आदि प्रत्यय इ ही प्रत्ययों में से किसी एक के रूपान्तर हैं।

४ हाडौती में दो वचन मिलते हैं। बहुवचन या प्रत्यय आ है जो स्त्रीलिंग शब्दों में आ रूप में मिलता है यथा—छोरो छोरा, छोरी छोरयाँ, नाई नाण्यां। प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० में जहाँ स्त्रीलिंग शब्द में इ या 'ई' स्वर ध्वनि थी वह हाडौती में आकर लुप्त हो गई पर बहुवचन शब्दों में वे अपना अस्तित्व बनाये रहो। मालण्या चारण्यां आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। व्यक्तिवाचक सज्ञा शब्दों के बहुवचन का प्रत्यय होणू है जसे—गोल्या होणू।

५ हाडौती कारक रूपों की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। शब्द रूपो में दो अविकारी तथा दो विकारी रूप मिलते हैं। विकारी रूपो के साथ विभिन्न पर सग जुडकर भिन्न भिन्न कारकीय सम्बन्धो को प्रकट करते हैं। अविकारी एक

---

[1] डॉ० नामवरसिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० ५।

वचन का प्रत्यय शून्य है और बहुवचन का 'आ' है जिनसे छोरो और छोरा रूप सम्पन्न होते हैं। स्त्रीलिंग के ऐसे बहुवचन रूपों का प्रत्यय आ' है जो शब्द के अन्त्य स्वर के मात्रा भेद से 'या या 'वा रूप ले लेता है। विकारी पुल्लिंग शब्द के एकवचन का आ' प्रत्यय है और बहुवचन का आं' जिनसे छोरा और छोरां रूप बनते हैं।

हाड़ौती मे रूपों की अल्पता से जो अस्पष्टता आ सकती थी उसकी पूर्ति परसर्गों द्वारा हो जाती है। हाड़ौती के परसर्ग निम्न हैं

कर्ता—न

कर्म व सम्प्रदान—न, इ

करण और अपादान—सूं सै

सम्बन्ध—क, का की को रै रा, री, रो ण णा, णी, ण,

अधिकरण—म प, सम्बन्ध कारक के परसर्गों की चार श्रेणियां हैं जिनसे भेद्य के लिंग वचन और कभी कभी कारक रूप का बोध इस प्रकार होता है—

(१) ओकारान्त परसर्ग—भेद्य पुल्लिंग, एकवचन और अविकारी कर्ता।

(२) औकारान्त परसर्ग—भेद्य पुल्लिंग, एकवचन या बहुवचन तथा अविकारी कर्ता के अतिरिक्त कारकरूप।

(३) ईकारान्त परसर्ग—भेद्य स्त्रीलिंग, सभी वचन और कारक रूप।

(४) आकारान्त परसर्ग—भेद्य अविकारी रूप मे।

रकार युक्त तथा णकार-युक्त परसर्ग तो सर्वनामो के साथ ही प्रयुक्त होते हैं और ककार-युक्त परसर्ग शेष नामिका म प्रयुक्त होते हैं।

६ सर्वनामो के प्राय सभी रूप हाड़ौती मे मिलते हैं। पुरुषवाचक अन्य पुरुष सर्वनामों तथा दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनामों के रूप एक ही हैं, वे हैं—ऊ, व, वा। इसी प्रकार निजवाचक 'आप' और आदरसूचक 'आप अपने प्रातिपदिक तथा अन्यरूपों म समान हैं, पर निजवाचक सर्वनाम के साथ सम्बन्ध कारक म रो णी आदि परसर्ग प्रयुक्त होते हैं, जबकि आदरसूचक सर्वनाम के साथ इसी कारक म को का आदि परसर्ग प्रयुक्त होते हैं। हाड़ौती में निजवाचक सर्वनाम के रूप में पुरुषवाचक सर्वनामों के प्रयोग भी प्राय मिलते हैं यथा, तू थारो काम कर म्हूं म्हारा घर जाऊं।

७ हाड़ौती गुणवाचक विशेषणों के दो रूप मिलते हैं

क सप्रत्यय गुणवाचक विशेषण, जिनका प्रत्यय विधान इस प्रकार है—

(१) अविकारी पुल्लिंग एकवचन मे—ओ।

( ) विकारी पुल्लिंग शेष रूपों म—आ।

(३) स्त्रीलिंग के सभी रूपों म—ई।

इनके उदाहरण हैं—काळो बल ऊंचा मकान्, धोळी गाय्।

ग अप्रत्यय गुणवाचक विशेषण प्राय व्यजनान्त होते हैं, जसे—लाल फागडी (पगडी) लाल स्याफो (साफा), पर सज्ञा शब्दो स बने ऐसे विशेषण स्वरान्त होत हैं यथा—कोई देसी गाय या बल।

हाडोती म समूहवाची सख्यावाचक विशेषणो मे जोडा (दो का समूह) गडो (चार का समूह) और पचोठ (पाँच का समूह) उल्लखनीय हैं। सख्या की अनिश्चितता प्रकट करने के लिए बीसेक दसेक की प्रणाली अपनायी जाती है।

८ क हाडोती के अस्तिवाचक क्रिया रूप छ, छा आदि उसे पश्चिमी तथा पूर्वी राजस्थानी की अनेक बोलियो से पृथक कर देते हैं। इस दृष्टि से वह जयपुरी के समीप है। डा० ग्रियसन ने ऐसी समानताओ को ध्यान म रखकर हाडोती को जयपुर की उपबोली रूप म स्वीकार किया है, पर दोनों में ऐसी अनेक असमानताए हैं जो उक्त सम्बन्ध स्थापन में बाधक हैं।

ख हाडोती के वतमान निश्चयाथ का विकास हिन्दी के समान सस्कृत 'शत' कृदन्त से न होकर लट लकार से हुआ है। इसलिए ऊ जाव ऊ दोडे रूप हाडोती में मिलते है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए अस्तिवाचक सहायक क्रिया का वतमान निश्चयाथ का रूप भी प्रयुक्त होता है यथा—ऊ जाव छ ऊ दोडे छै।

ग हाडोती का भूत निश्चयाथ सस्कृत के भूतकालिक कृदन्त स बना है। यहाँ क्रिया क लिंग वचन सकमक क्रिया में कम के अनुसार होते हैं और कर्ता ततीया में प्रयुक्त होता है यथा—मन रोटी खाई पर वतमान निश्चयाथ में इससे भिन्न स्थिति है, यथा—म्हू रोटी खाऊ छू। अकमक रूप म कर्त्ता का अन्वय क्रिया के साथ होता है यथा—म्हू दोडयो, या दोडी।

घ हाडोती क्रियाथक सना धातु क साथ बो प्रत्यय या णू प्रत्यय जोडने से सम्पन्न होती है, यथा—करबा करणू।

ङ वतमानकालिक कृदन्त प्रत्यय तो (पु०) और ती (स्त्री०) हैं और भूतकालिक कृदत प्रत्यय यो (पु०) और ई (स्त्री०) हैं, जो धातु के साथ इस प्रकार लगते हैं—उग तो खा-ती, खा यो खा ई। काल रचना में कृदन्त प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त मुख्य क्रिया क वतमान निश्चयाथ के रूप भी सहायक होत हैं। इनक उदाहरण हैं—ऊ चालतो होवगो (भविष्य अपूण निश्चयाथ) ऊ चाल्यो छ (भूत पूण निश्चयाथ) तथा ऊ चाल छ (वतमान पूण निश्चयाथ)।

च प्रेरणाथक धातु रूपो म आ या -वा प्रत्यय धातु के साथ लगते हैं। *आ के योग से सामान्य प्रेरणाथक धातु बनती है जब कि वा प्रत्यय के योग* से द्विगुणित प्ररणाथक धातु बनती है यथा—पका-पकवा चुरा चुरवा।

छ पूवकालिक क्रिया के हाडोती क रूप दो मिलत हैं—

धातु + -क प्रत्यय के योग से सम्पन्न।
धातु + अर प्रत्यय के योग से सम्पन्न।

इनके उदाहरण हैं—खाक, खार। यदि धातु की द्विरुक्ति के उपरान्त य, प्रत्यय प्रयुक्त हो तो उससे क्रिया की पुन-पुन आवृत्ति का संकेत मिलता है, यथा—ऊ रो रोर थाक ग्यो।

ज हाडौती मे सयुक्त क्रियाए भी पाई जाती है, जो मुख्य धातु के पूर्व कालिक कृदत, भूतकालिक कृदत वतमानकालिक कृदत और क्रियार्थक सज्ञा के साथ गौण क्रिया के काल रूपो को जोडने से बनती हैं यथा—मागग्यो, चालबू कर, देखतो रीजे और मागबो छाव।

हाडौती बोली है और बोली म वाक्य लघ्वाकारी होते हैं। इसलिए मिश्र तथा सयुक्त वाक्य कम सुनने मे आते हैं, साधारण वाक्य ही प्राय प्रयुक्त होते हैं जो एक शब्द से लेकर छ सात शब्दो तक के हो सकते हैं। यद्यपि बोलचाल म वाक्य म श ब्द का स्थान निश्चित है—कर्ता + अन्य कारक रूप + कर्म + क्रिया पर अर्थ भेद व बल से स्थानो म परिवर्तन होता रहता है—म्हन रोटी खाई (सामान्य कथन), रोटी म्हनै खाई (कम पर बल) वा आई (सामान्य कथन) आई न वा (क्रिया पर बल)।

शब्द क्रम बदलने पर कुछ अवस्थाओ म अर्थ बदल जाता है, जसे—हार् कुत्तो खावे छ और कुत्तो हार खाव छ।

वाक्य रचना के कुछ नियम इस प्रकार हैं

१ भेद्य श द भेदक के पास रहता है—बांदरा को बच्चा।
२ निजवाचक सवनाम पुरुषवाचक सवनाम के बाद म आता है—तू आप्णा काम कर।
३ विशेषण विशेष्य से पूर्व आता है—काळो घोडो।
४ सयुक्त क्रिया में प्रधान क्रिया गौण क्रिया से पूर्व आती है—उठ-बठयो।

हाडौती बोली का वर्गीकरण

ऐसा प्रचलित है कि हर बारह कोस पर बोली बदलती है। पर जब हाडौती के क्षेत्र पर हम दृष्टिपात करते हैं तब हमे आश्चय होता है कि इस क्षेत्र के उत्तरी भाग का निवासी लगभग वही बोली बोलता है जो दक्षिण का निवासी बोलता है। इसी प्रकार पूर्व तथा पश्चिमी सीमाओ के निवासियो की बोलियो म भी उल्लेखनीय अतर नही है। फिर भी तनिक सा अतर उत्तर तथा दक्षिण की बोलियो म मिलता है जिसके आधार पर हम हाडौती को दो वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं

१ उत्तरी हाडोती ।

२ दक्षिणी हाडोती ।

उत्तरी तथा दक्षिणी हाडोती के बीच की सीमा चम्बल नदी द्वारा बनाई गई है। पर चम्बल के उत्तर का वह भाग जो तत्कालीन कोटा राज्य का ही भाग था, दक्षिणी हाडोती के अन्तगत ही रहेगा क्योकि कोटा राज्य के निर्माण के उपरान्त इस भूभाग का प्रेरणा केन्द्र कोटा रहा है। इस प्रकार वतमान बूदी जिले का वह भाग जो हाडोती भाषी है उत्तरी हाडोती क्षेत्र म आता है और कोटा जिला का हाडोती भाषी क्षेत्र दक्षिणी हाडोती क्षत्र म आता है।

उत्तरी हाडोती और दक्षिणी हाडोती का अतर इस प्रकार है

१ उत्तरी हाडोती म पुरुषवाचक सवनामा म उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष म क्रमश मे और ते रूप प्राय सुन पडते हैं। ये एकवचन मे भी प्रयुक्त होते हैं और बहुवचन म भी पर इनके साथ क्रिया सदव बहुवचन की आती है। दक्षिणी हाडोती मे क्रमश म्हू थू या तू रूप एकवचनीय हैं और म्हा तथा थां बहुवचन के रूप हैं तथा क्रिया ऐसे शब्दों के अनुरूप लिंग वचन म रहती है। उत्तरी हाडोती के उपयुक्त रूपा के अतिरिक्त दक्षिणी हाडोती के रूप भी उत्तरी हाडोती क्षेत्र मे प्रयुक्त होते हैं।

२ दक्षिणी हाडोती म क्रिया के सामान्य भविष्यत के रूप गो, गू गा आदि को क्रिया के वतमान निश्चयाथ रूप म जोडने से सम्पन्न होते हैं पर उत्तरी हाडोती मे ये धातु शब्दो के साथ सी स्यू आदि के योग से भी बनते हैं। इस प्रकार दक्षिणी हाडोती के तू आवगो' वाक्य के अतिरिक्त 'तू जासी — प्रकार के वाक्य भी मिलते हैं।

३ जहाँ दक्षिणी हाडोती म य्हा ज्यां वां आदि स्थानवाचक क्रिया विशेषण प्राय सुनने को मिलते हैं और स्थान सकेत वाचक क्रिया विशेषण अठी, उठी, जठी भी सुने जाते है वहा उत्तरी हाडोती म अठ उठ कठ शब्द प्राय सुनने मे आते हैं। शेखावाटी मे भी यही स्थान वाचक क्रिया विशेषण प्रयुक्त होते हैं।

हाडौती मे ध्वनि-शिक्षा और लिपि

कक्का या व्यजन माला

हाडौती की कोई स्वतन्त्र वर्णमाला नही है। हाडौती क्षेत्र मे विद्यार्थी को वही सीखना पडता है जो हिंदी क्षेत्र के विद्यार्थी को सीखना पडता है। स्वर और व्यजनो की सख्या भी लगभग वही है, यद्यपि व्यवहार मे कम ही स्वर तथा व्यजन आते है। प्राचीन पद्धति से शिक्षा प्राप्त करने वाला विद्यार्थी 'बारखडी' या द्वादशाक्षरी सीखता है। वस्तुत ये द्वादश या बारह स्वर हैं जिनका विविध व्यजनो के साथ प्रयोग करना ही बारखडी कहलाता है, इस प्रकार प्रत्येक व्यजन के रूप इस प्रकार मिलते हैं

(१) क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः।

(२) ख, खा, खि, खी, खु, खू, खे, खै, खो, खौ, खं, खः आदि।

प्राचीन परपरागत 'बारखडी' के इन रूपो से स्वरो की सख्या निश्चित हो जाती है। हाडौती की बारखडी के बारह स्वर इस प्रकार हैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। ये स्वर प्राचीन काल मे इस क्षेत्र मे व्यवहार मे आते होगे पर आधुनिक काल मे इनमे से इ, ऐ, औ तथा अः के प्रयोग हाडौती बोलचाल मे नही सुनायी पडते।

हाडौती मे व्यजन शिक्षा जिसे यहा 'कक्का' कहा जाता है की बडी रोचक पद्धति प्रचलित है। क इस पद्धति का आदि अक्षर होने के नाते व्यजन माला का पर्याय बन गया है। हाडौती मे एक मुहावरा भी प्रचलित है, जो व्यक्ति की निरक्षरता को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है जाण तो कक्को ई न अर्थात नितान्त निरक्षर है। यह कक्का या व्यजन शिक्षा इस प्रकार है

कक्का र कवळियो। कक्का खून चीरयो। गग्गा गोरी गाय। घग्गो घटूल्यो। नन्या वाळो दवाळो। चडा चजा की चांचोडी। सज्या बज्या पोटाळोप। जज्जाया की घीसाडो। नन्या खाडो चदरमा। कुटका मडी रूटकडी। टटटो धीर घलावणो। ढढ्ढा ढावड गाठोडी। डडडा पूछड फूचोडी। राणा थारी तीन रीगटी। ततो

तम्बोली ताडो। तांत मारयो थाजो। दद्दो दवा मां दीवट को। दद्दो धनक छोडया जाय। म्राग न यो माग्यो जाय। पा पा फाटकडी। फफ्फो फलात को। बबबो बाडी बैंगणथा। बब्बो मूछ कटार को। मम्मा मात मागळो। म्रायो जाडा पेट को। ररों राव राखोली। लल्लो लाव स्वाल्या। लल्लो लाव तळां की लो। वाटळो की बीदो की। ससो नगोटो। ससा पला रो। हाहा हीडोली। कडयां कटको मोरडो। च्यार बीदया चोरडो।

इस व्यजन शिक्षा म मनोवैज्ञानिक पद्धति का निर्वाह मिलता है। प्रारम्भिक कक्षाम्रो म म्रध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए चित्रमयी पुस्तका से शिक्षा देने की पद्धति म्राज प्रचलित है। इसीलिए बच्चे 'क' कबूतर से म्रपनी व्यजन शिक्षा प्रारम्भ करत है म्रौर कबूतर के चित्र के साथ क रूप म बनी रेखाएँ इस चित्र द्वारा सहज ही स्मरण रह जाती हैं।

इससे एक भिन्न पद्धति भी है, जिसे वणमाला याद करते समय बच्चो द्वारा म्रपनाया जाता है। यह पद्धति गाकर याद करने की है। इसे ही पहाडो को याद करते समय छोटे छोटे बालक म्रपनाते है। वे एक दुवा दो म्रौर दो दुवा च्यार को गाकर याद करत ह म्रौर इस प्रकार रूखे पहाडे सरलता से याद कर लेते हैं। इस पद्धति के म्रपनाने से उनके कोमल मस्तिष्क पर म्रधिक बोझ नही पडता है।

म्रत यह स्पष्ट है कि नीरस म्रक्षर ज्ञान को सरलता के साथ हृदयगम करने के लिए चित्रकला म्रौर सगीतकला का म्राश्रय म्राज भी लिया जाता है। हाडोती का ककका इन दोना का समन्वित रूप है। उस गाकर भी याद किया जाता है और प्रत्येक म्रक्षर के साथ एसा सार्थक चित्र भी जुडा हुम्रा है जो उस व्यजन की म्राकृति के म्रनुरूप होता है तथा चित्रगत वस्तु उसके म्रासपास की बिखरी हुई वस्तुम्रो मे स होती है। यह ककका उस समय म्रति मनोवैज्ञानिक रहा होगा जब मुद्रण यन्त्रा के म्रभाव म पुस्तका के दशन जनसाधारण को दुलभ थे।

उपयुक्त वणमाला पर दृष्टिपात करने के उपरात म्रधिकाश व्यजना को चित्र द्वारा समझाये जाने की पद्धति का स्पष्ट बोध हो जाता है। कुछ व्यजना के चित्रेतर सकेत भी मिलत हैं पर ऐसे भी सकेत प्राय किसी चित्रमय व्यजन की म्रोर होते हैं। ज्ञात के सहारे म्रज्ञात को हृदयगम करना सरल हो जाता है। इस दृष्टि से एसे सकेत भी कम महत्त्वपूर्ण नही हैं।

सीद । का ध्वनि-वर्गीकरण

हाडोती के प्रत्येक विद्यार्थी को साक्षर बनने के लिए ककका तथा सीदो म्रवश्य पढ़ना पडता था। सीद । या सीधा उसी प्रकार का नाम है जिस प्रकार

का 'कक्का' है। जिस प्रकार कक्का व्यंजन माला का ग्रहण करने की प्रवृत्ति का द्योतक है उसी प्रकार 'सीधा' समस्त अक्षरों का व्याकरणिक विश्लेषण है। शर्ववर्मा के द्वारा संस्कृत शिक्षा को सुगम बनाने की प्रक्रिया का परिणाम सीदा है।

हाडौती का सीदा' 'कातन्त्र रूपमाला' से लिया गया है।[1] पाणिनि का व्याकरण पंडितों में सम्मानित रहा, पर जनसाधारण मे वह ग्राह्य नहीं हो सका। वह दुरूह था, विशाल था। पाणिनि के आधार पर अनेक व्याकरण ग्रन्थ रचे गये शर्ववर्मा ने ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर कातन्त्र व्याकरण की रचना सम्भवत ईसा की पहली शताब्दी में की थी।[2] इसकी रचना बाल बोधाय' हुई थी। राजस्थान जैन मत के प्रचार का क्षेत्र होने के फलस्वरूप इस व्याकरण का प्रचार जन-जन में हो गया था, पर कालान्तर विद्यार्थी इसे बिना समझे ताता-रटन प्रणाली से घोखने लगे।

नीचे हाडौती का सीदा' और उसका 'कातन्त्र रूपमालागत' शुद्ध रूप दिया जा रहा है।

हाडौती सीदा	कातन्त्र रूपमालागत शुद्ध रूप
सीदो वरणा, समामुनाया	सिद्धो वर्ण समाम्नाय
चत्रु चत्रु दासा दऊ सॅवारा	तत्र चतुर्दश दो स्वरा
दस समाना	दस समाना
तकू दूज्या वराणो, नसीस वरणा	तेषां द्वौ द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ
पूरबो हसवा	पूर्वो ह्रस्व
पारा दुग्गा	परो दीर्घ
सारो वरणा वन्यो नामी	स्वरो ऽवर्ण वर्जो नामि
इकरान्त मैं सत कराणी	एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि
(?)	नित्य सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणि
कादीनाऊ बन्यो नामी	कादीनि व्यजनानि
ते वरगा पचा पचा	ते वर्गा पच पच
वर्णानामी परतम दतय्यो सखो सायचा	वर्गाणा प्रथमद्वितीया शषसाश्चाघोषा
गोग पनारणा	घोषवन्तोऽन्य
मान ना सका, नया नू नामा	अनुनासिका ङञणनमा

---

१ देखिये कातन्त्र रूपमाला व्याकरणम् पृ १।
२ द्रष्टव्य—संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका प १५।

उस्ताद र ल-वा (ग्रनना सता जेरे लवा)	ग्र-तस्था यरलवा
उक्मन सखो साहा (रूक्मण सयो साहा)	उप्माण शषसहा
ग्रायती विसजनीया (ग्रायती विसार जुनिया)	ग्र इति विसजनीया
कायतो जिह्वामूलीया	×क इति जिह्वामूलीय
पायती पदमानीया	‿प इत्युपध्मानीय
ग्रायो ग्रायो रतन सवारो	ग्र इत्यनुस्वार

उपयु क्त हाड़ौती सीदा ध्वनि परिवतन की दष्टि स महत्त्वपूण है । इसम ह्रस्व 'इ का प्रयाग ग्रहाड़ौती प्रभाव का द्योतक है । बज्योनामी -यजनानि का विकृत रूप है जो मूल से इतना दूर जा पडा है कि दोनो म किसी सम्ब-ध को स्थापित करना सहसा दुरूह है । कही कही यह विकृति मूल से बहुत दूर तक नही पहुची है यथा—पूरवो हसवा—पूर्वो ह्रस्व और पारोदुगा—परोदीघ ।

लिपि

हाड़ौती लिपि देवनागरी लिपि से मिलती है । हा इसके कुछ ग्रक्षरो की बनावट म देवनागरी लिपि से ग्र-तर मिलता है यथा—हि-दी क क तथा 'ख हाड़ौती म ꠆ तथा 'ष' रू म मिलत हैं ꠆ गुजराती स मिलता है । इसी प्रकार ळ की बनावट भी हि-दी ल से भि-न है ।

यह लिपि 'बाणयाँवाटी' के नाम स हाड़ौती क्षत्र म ग्रभिहित है । इसकी विशेषता यह होती है कि इसम प-ले एक ग्राडी रेखा खीच दी जाती है और फिर उसके नीचे सहारे सहारे ग्रक्षर लिखे जात हैं । इस लिपि म सयुक्ताक्षर प्राय नही बनाये जाते सयुक्ताक्षरता गोप्या मोया ग्रादि श-दो म मिलती है जिनको इस प्रकार लिखा जाता है—गोप꠆ मोत꠆ । इस लिपि म ह्रस्व ग्रौर दीघ मात्राग्रा के ग्रन्तर की ग्रोर ध्यान नही दिया जाता है पर प्राय दीघ मात्राग्रो का ही प्रयाग मिलता है मात्राग्रो क लिए कानामात (कण तथा मात्रा) श-द प्रच लित है । इसको प-ने वाल प्राय ग्रटकल स इसे पढ पाते हैं क्योकि ग्रनेक ग्रवस्थाग्रों म तो कानामात लगाये भी नही जात । एक लकीर के सहार ग्रनेक ग्रक्षरो को लिखे जान के फलस्वरूप प-ने क लिए ग्रभ्यास की ग्रत्य-त ग्रावश्यकता होती है । इसका स्थान देवनागरी लिपि ग्राजकल ग्रहण करती जा रही है । इस बाणयाँवाटी या महाजनी लिपि क ग्रक्षर मुडिया कहलात हैं । यह एक तरह शाट हैंड का काम दती है ।

बालच द मोदी के अनुसार मोतीलाल मेनारिया[1] ने इन मुडिया अक्षरो के आविष्कर्ता मुगल सम्राट अकबर के अर्थ मन्त्रि राजा टोडरमल को माना है। इसकी पुष्टि मे टोडरमल का बनाया हुआ एक दोहा दिया गया है

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यजन व्यवहार।
ताते जग के हित सुगम, मुडिया कियो प्रचार।

परन्तु ओझाजी ने मोडी लिपि के सम्बन्ध म लिखा है— इसकी उत्पत्ति के विषय म पूना की तरफ के कोई कोई ब्राह्मण एसा प्रसिद्ध करत हैं कि हेमाडपन्त अर्थात प्रसिद्ध हेमाद्रि पडित न इसको लका स लाकर महाराष्ट्र म प्रचलित किया। परन्तु इस कथन म कुछ भी सत्यता नही पाई जाती, क्योंकि प्रसिद्ध शिवाजी के पहल इसके प्रचार का कोई पता नही चलता। शिवाजी ने जब अपना राज्य स्थापित किया तब नागरी का अपने राज्य की लिपि बनाया। परन्तु उसके प्रत्यक अक्षर के ऊपर सिर की लकीर बनाने के कारण कुछ कम त्वरा स वह लिखी जाती थी, इसलिए उसको त्वरा स लिखी जान क योग्य बनाने के विचार से शिवाजी के चिटनीस मन्त्री, सरिश्तेदार बालाजी आवाजी ने इसक अक्षरों को मोड मोड (तोड मरोड)-कर नई लिपि तयार की, जिससे इसको 'मोडी' कहत हैं। पेशवाओं के सम्बन्ध म बिवलकर नामक पुरुष न उसम कुछ और फेरफार कर अक्षरो को अधिक गालाई दी। यह लिपि सिर के स्थान म लम्बी लकीर खींचकर लिखी जाती है। इसम 'इ' तथा 'ई' और 'उ तथा ऊ' की मात्राओ म ह्रस्व दीर्घ का भेद नही है और न हलत व्यजन है।[2]

हाडौती लिपि नाली की दृष्टि स मोडी लिपि से प्रभावित है पर वर्णों की बनावट स्पष्ट रूप से नागरी और गुजराती से प्रभावित है जसा कि ऊपर कहा जा चुका है। कुछ हाडोती के वर्णों की बनावट गुजराती क अनुसार है। हाडौती के क ख भ, न गुजराती क अनुसार ક ખ ઝ ન रूप म पाय जात हैं। 'गुजराती का ख' तो प स बना है और इ तथा झ जन शैली की नागरी लिपि से लिय गय हैं।[3] शेष हाडौती वर्ण नागरी लिपि म लिखे जात हैं।

---

१ मनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ २ ।
२ ओझाजी—भारतीय प्राचीन लिपि माला पृ० १३१ ,२।
३ वही पृ १३१।

हाड़ौती का क्षेत्र तथा उसका सीमावर्तिनी बोलियो सेअतर

हाड़ौती बोली ५,६१०३४ व्यक्तियो द्वारा बोली जाती है।[1] डा० ग्रियसन के अनुसार हाडोती बदी तथा कोटा म बोली जानेवाली भाषा है जहाँ प्रमुख रूप से हाडा राजपूत बसे हुए हैं। यह समीपवर्ती ग्वालियर (छबडा) तथा झालावाड राज्या म भी बोली जाती है।[2] आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हुए एक एक करके इन सभी राज्यो को लेकर उसका निश्चित स्थान निर्धारित करते हैं। उत्तर पश्चिम राज्य के भाग को छोडकर सारे बूदी राज्य म दक्षिणी पूर्वी तथा दक्षिणी पश्चिमी भूभाग को छोडकर समस्त कोटा राज्य मे कोटा के सीमावर्ती शाहाबाद और छबडा परगना के मध्य मे तनिक कम शुद्ध रूप म सीपरी या श्योपुरी नाम से श्योपुर परगने म टोक के छबडा परगने म तथा झालावाड राज्य के उत्तर म स्थित पाटन परगना म हाडौती बाली जाती है।

डा० ग्रियसन को हाडा राजपूतो के कोटा तथा बूदी म प्रमुख रूप स बसे होने का भ्रम हाडौती नामकरण स हो गया। वस्तुत हाडा राजपूत यहाँ के शताब्दियो से शासक रहे हैं न कि यहा के प्रमुख निवासी हैं।

डा० ग्रियसन ने जिस हाडौती के क्षेत्र का उल्लेख किया है उसम सीपरी या श्योपुरी का क्षेत्र श्योपुर परगना नही हो सकता। श्योपुरी या सीपरी एक ऐसी बोली है जो हाडौती से भिन्न और बुदेली के अधिक निकट है। शताब्दियो से श्योपुर परगने के राजनीतिक प्रशासनिक सामाजिक और धार्मिक सबध पश्चिम स्थित कोटा जिले से न होकर पूर्व स्थित ग्वालियर राज्य या वतमान

---

१ सेंसस आफ इंडिया १९६१ प ८४।

२ लि० स० इ० पुस्तक ६ भाग २ प २३।

मध्य प्रदेश से रहे हैं। अत श्योपुरी का विकास हाडौती से स्वतंत्र हुआ है। इसका अध्ययन हाडौती के अंतर्गत नहीं किया जा सकता।[1] दूसरी बात जो इससे भी महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि सन १९६१ की जनगणना में सीपरी के संबंध में जो आँकडे दिये गए हैं उनके अनुसार सीपरी भाषी मध्य प्रदेश में कुल ४८७ व्यक्ति हैं जो मुरैना जिले में रहते हैं।[2] पर भारत में ऐसी अनेक बोलियाँ हैं जिनके बोलने वालों की संख्या १ २ तक है।[3] इससे सीपरी का स्वतन्त्र बोली के रूप में अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता है। मुरैना जिले की कुल जनसंख्या ६,३३,५८१ है।

बूंदी जिले का अधिकांश भाग हाडौती भाषी है। बूंदी तहसील के थोडे से उत्तरी भाग में खराडी बोली जाती है। इन्द्रगढ और नैनवा के उत्तरी अर्धभाग क्रमश खराडी और नागरचालभाषी हैं। इनके दक्षिणी भागों में हाडौती बोली जाती है।

कोटा जिले की सभी तहसीलों में हाडौतीभाषी जनसंख्या की प्रमुखता नहीं है। शाहबाद तहसील में हाडौतीभाषी व्यक्ति अत्यल्प रहते हैं, अधिकांश ब्रजभाषी हैं। किशनगंज तहसील का पूर्वी भाग—भँवरगढ से पूर्व का भाग हाडौती क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता। इसी प्रकार चेचट और रामगंजमंडी की तहसीलें भी अधिकांश में मालवी क्षेत्र के अंतर्गत ही आती हैं। लाडपुरा दीगोद, बडौद इटावा पीपल्दा मांगरोल, अंता बारां, अटरू, छीपाबडोद व किशनवास और मनोहरथाना की तहसीलें प्राय हाडौती भाषी हैं।

वर्तमान झालावाड जिले की केवल खानपुर तहसील पूर्णरूपेण हाडौती-भाषी है। असनेरा तथा झालरापाटन तहसीलों के उत्तरी भाग हाडौती क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। अकलेरा बकानी मनोहर थाना तहसीलों के अधिकांश दक्षिणी भाग मालवी क्षेत्र के अंतर्गत हैं और पिडावा, डग गंगधार तथा पच पहाड तहसीलों में सौंधवाडी बोली जाती है।

इस सीमा निर्धारण को तनिक अधिक स्पष्ट सीमास्थ गाँवों को संकेतित करके बताया जा सकता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि गाँव विशेष तक ही हाडौती बोली की कोई सीमा है उससे आगे पीछे नहीं तथापि कुछ गाँव ऐसे होते हैं जहाँ एक बोली अपना अस्तित्व खोती-सी जान पडती है और दूसरी अपना अस्तित्व बनाती सी प्रतीत होती है। अत यहाँ सीमा निर्धारण की दृष्टि से उन प्रमुख बड़े-बड़े गाँवों को लिया जा रहा है जो हाडौती की सीमा के

---

१ विशेष जानकारी के लिये देखिए— हाडौती और सीपरी का अन्तर इसी लेख में।

२ सेंसस ऑफ इंडिया १९६१ पृ० ८७

३ सेंसस ऑफ इण्डिया १९६१ पृ० १४१ से १८३ तक।

निम्नतम है और हाड़ौती प्रदेश में है।

हाड़ौती का उत्तर में प्रसार मानोली इन्द्रगढ़ नयना तथा गोठड़ा ग्रामों तक है। पश्चिम में उमर सीगोपिया व हाली प्रमुख गाँव हैं। दक्षिणी सीमा झालावाड़, मनावर मकसरा और छबड़ा के समीप होकर गई है और पूर्वी सीमा छबड़ा मकरगढ़ पीपल्या और सारोली से बनाई गई है। पूर्वोत्तर सीमा तो बहुत दूर तक पारवती नदी द्वारा भी बनाई जाती है। यह नदी हाड़ौती क्षेत्र को मीणरी क्षेत्र से पृथक करती है।

हाड़ौती की सीमाएँ

हाड़ौती के उत्तर में नागरचाल और डांगमाग बाकी जानी है। उत्तर पूर्व में सोपुरी या सीपरी मिलती है। पूर्व में बुन्देलखंडी और मालवी बोली जाती हैं। दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण में मालवी का प्रसार है। दक्षिण पश्चिम में मालवी और सोंध्याडी पायी जाती है। पश्चिम में मालवी के अतिरिक्त मेवाडी मिलती है और उत्तर पश्चिमी भाग मेवाडी तथा खेराडी गायी है।

हाड़ौती का सीमावर्तिनी बोलियों से अन्तर

यहाँ हाड़ौती का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उसकी सीमावर्तिनी बोलियों से उसका अन्तर दिया जा रहा है।

मेवाडी और हाड़ौती का अन्तर – हाड़ौती क्षेत्र के पश्चिम में मेवाडी भाषी प्रदेश है। मेवाडी सारे उदयपुर जिले के दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिणी भाग को छोड़कर जहाँ 'भीली' बोली जाती है शेष समस्त जिले में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त भी *इस क्षेत्र के आस पास के भागों में यह सरवाडी खेराडी तथा* मेरवाडी नाम से बोली जाती है। मेवाडी मारवाडी तथा जयपुरी का मिला हुआ रूप है। अतः इसमें मारवाडी और जयपुरी दोनों की विशेषताएं मिलती हैं। मेवाडी तथा हाड़ौती में प्रमुख अन्तर ये हैं

१ जिन शब्दों में हाड़ौती में आदि में स या श मिलता है वहाँ मेवाडी में आदि में ह पाया जाता है यथा—मे० हगला हाबू हात हूँग्यो क्रमश हा० सगला साबू सात सोग्यो।

२ मेवाडी में व का प्रयोग शब्द में सर्वत्र प्रचुरता से होता है। हाड़ौती में शब्द के आदि 'व' सर्वनामों तथा अन्य कतिपय शब्दों को छोड़कर प्राय नहीं प्रयुक्त होता है और शब्दान्त में भी व की अपेक्षा ब का प्रयोग अधिक मिलता है यथा—मे० वाट आवा री क्रमश हा० बाट आवा की।

३ जिन शब्दों में हिन्दी में महाप्राण ध्वनि मिलती है हाड़ौती में तो उसे किसी न किसी प्रकार बनाए रखने की प्रवृत्ति है, पर मेवाडी के अनेक शब्द उसे

खो चुके हैं यथा—मे० ग्यो, क्यो रेवा क्रमश हा० होयो, खो र बा।

४ मेवाडी म अन्य पुरुष सवनाम सकेत सूचक सवनाम सबधसूचक सवनाम तथा प्रश्नवाचक सवनाम शब्दों म 'णी णा' ध्वनिया भी प्राय सुनने म आती हैं। हाडौती म उक्त ध्वनिया का सवथा अभाव है। यथा—मे० उण अणी वणी, अण, अणी इणी जणा, जणी कुण, कणी। हाडौती मे इनके स्थान पर ऊ वा, ई, या जी ज्या खी, ख्या के प्रयोग मिलते हैं।

५ मेवाडी म कर्त्ता कारक का प्रयोग सामान्य भूतकाल के साथ परसग रहित होने की प्रवृत्ति प्राय दिखाई देती है जो जयपुरी से मिलती हैं, पर हाडौती म प्राय न' परसग का प्रयोग दिखाई पडता है यथा—मे० राजा क्यो हा० राजा न खी। मे० वणी राजा की आवभगत कीदी। हा० ऊन राजा की आव भगत करी।

अन्यथा दोनो म इस प्रकार के प्रयोग भी मिल जाते हैं—मे० वीजी नै वही पूछयो और हा० म्हें ग्यो।

६ मेवाडी म सम्बधकारक के परसग रूप मे रो, 'रा प्रयोग सना शब्दो म भी मिलता है। हाडौती म य परसग केवल पुरुषवाचक सवनाम शब्दों के साथ दिखाई पडत है। मेवाडी म यह प्रवृत्ति मारवाडी स आई है। यथा—मे० राजा री बेटीरी हा० राजा की बेटी की। कहीं-कहीं पुरुषवाचक सवनामो के साथ जयपुरी के प्रभाव के फलस्वरूप ळो का इसी विभक्ति म प्रयोग मिलता है जिसका हाडौती म सवथा अभाव है। यथा—मे० म्हाळो, थाळो क्रमश हा० म्हारो, थारो।

७ मेवाडी म अपादान तथा करण कारको म हूँ परसग का प्रयोग मिलता है। हाडौती म सूं या स का यथा—मे० हाथ हूँ हा० हात स् म० रूख हूँ हा० रूख सू।

८ अस्तिवाचक क्रिया के वतमान निश्चयाथ तथा भूत निश्चयाथ के रूप हाडौती रूपो से भिन्न मिलत हैं, यथा—मे० है हा हा० छ छा।

९ कुछ क्रियाओ के भूत निश्चयाथ क रूप मेवाडी म हाडौती से सवथा भिन्न होत हैं और इनका प्रयोग प्राय मे० म देखने मे आता है। यथा—मे० दीदो, लीदो क्रमश हा० द्यो, ल्यो किन्तु ग्यो उठयो आदि रूप दोनो म एक ही प्रकार से सम्पन्न होते हैं।

१० मेवाडी का भूत अपूर्ण निश्चयाथ अस्तिवाचक सहायक क्रिया का भूत निश्चयाथ का रूप और वतमानकालिक कृदन्त के योग म सपन्न होता है। हाडौती का यह रूप अस्तिवाचक सहायक क्रिया के भूत निश्चयाथ तथा मूल क्रिया के वतमान निश्चयाथ क योग स बनता है। यथा—मे० रती हा हा० रय छा, म० करता हा, हा० कर छा।

११ मेवाड़ी में पूर्वकालिक रूप धातु रूप में 'ईने' प्रत्यय लगाकर प्राय बनाए जाते हैं। हाड़ौती में ऐसे रूपों से 'र' का प्रयोग मिलता है, यथा—मे० जाईने मारीने हा० जार मार।

डा० ग्रियर्सन मेवाड़ी की पूर्वकालिक क्रिया का अन्त और ने रूपों पर 'र' से बताते हैं।[1] पर यह रूप आजकल मेवाड़ी में नहीं पाया जाता। हाँ सीमावर्ती प्रदेशों में यह मिलता है।

१२ मेवाड़ी में पूर्ण भूत अपूर्ण भूत का अर्थ भी बतलाते हैं। यथा—गावा हा खावा हा।[2]

१३ क्रियार्थक संज्ञाओं के रूप राजस्थान में दो प्रकार के मिलते हैं। १ धातु में णो, पू जोड़कर २ धातु में बो, बू जोड़कर। मेवाड़ी में प्रथम प्रकार के रूपों का प्रयोग प्राय सुना जाता है और हाड़ौती में दूसरा प्रकार प्राय प्रयुक्त होता है यथा—मे० करणो हा० करबो।

१४ मेवाड़ी में संयुक्त क्रियाओं के रूप हा० से भिन्न प्रकार से बनते हैं। यथा—मे० लईग्यो आईग्यो चाल सकूं क्रमश हा० लग्यो, आग्यो चाल सकूं। मेवाड़ी में दोनों क्रियाओं के बीच ई की सस्थिति है।

१५ मेवाड़ी में वणीरीज, म्हारीज जैसे शब्दों में ज' का प्रत्यय रूप में प्रयोग संस्कृत एव के अर्थ में मिलता है। हिन्दी में ऐसे शब्द के अर्थ होंगे 'उसकी ही तथा मेरी ही। हाड़ौती में इस प्रकार का प्रयोग नहीं मिलता।

नीचे पहले एक श्रुत लेख दिया जाता है जिसके वक्ता उदयपुर निवासी एक प्राध्यापक हैं। दूसरा गद्य ग्रियर्सन के भारतीय भाषा सर्वेक्षण से उद्धृत है।

१ मेवाड़ी गद्य

एक डोकरी ही। वा एक गाँव में रती ही। वणी गाँव में एक नार रोज आवतो हो। एक दन गाँव वाळा होच्यो क डूगरा में जाईने काटा ल्यावा। गाँव वाला डोकरी पाखी पोच्या। डोकरी बोली क म्हूँ तो चाली नी सकूं। था डूगरी प जावा न किस्तर की ? गाव वाला क्यो क थू थारो बदोबस्त थूईज करली ज। यो कई न गाँव वाला चल्या गया।

हाड़ौती गद्यानुवाद

एक डोकरी छी। वा एक गाँव में रेव छी। ऊ गाँव में एक हार रोजीन आव छो। एक दन गाँव हाळा न बच्यारी क डूगर में जार काँटा लावाँ। गाँव

---

[1] लि स० ई पुस्तक ९ भा २ पृ० ७८।
[2] वही भा २ पृ ७९।

हाळा डोकरी क गोड वी ग्या। डोकरी न खी क म्हूँ तो न चाल सकू । या डगर म कस्या जावगा। गाँव हाळा न खी कै थूईथारो अतज्याम कर लीज। या खर गाँव हाळा चल्या गया।

२ मेवाडी गद्य[1]

कुणी मनख क दोय बेटा हा। वामा हूँ ल्होडक्यो आपका वाप नै कह्यो है बाप पूँजी मा हूँ जो म्हारी पाँती होव म्हन द्यो। जद वा नै आपकी पूजी बाँट दी दी। थाडा दन नही हुया हा क ल्होडक्यो बटो सगळो धन भेलो कर हर परदेस परोगयो अर उठ लुच्चापण मा दन गमावता हुवा आपको सगळो धन उडाय दीनो। जद ऊ सगळो धन उडा चुक्यो तन वी देस माँ मारी काल पड यो अर ऊ टोटायलो हो गयो।

हाडौती गद्यानुवाद

एक मनख के दो बेटा छा। वा मैं सू छोटानै आपण वाप सू खी। हे माई जी पूजी मैं सू ज्यो म्हारी पाती हाव वा मई दे दो। जन वान वाई आपणी पूजी बाँट दी। थोडा सा दना पाछ छोटो बेटो सारो धन एकठो कर परदेस चल्यो ग्यो। अर वहा लुच्चापण मैं म्न बतावा लाग्यो अर आपणी सारी पूजी उडादी। जन ऊ न सारो धन उडा द्यो तो ऊ देस मैं मारी काळ पड यो अर ऊ द्वाळयो हो ग्यो।

सादवाडी और हाडौती का अतर

सादवाडी हाडौती क्षत्र के दक्षिण म बोली जाती है। यह दक्षिणी झालावाड जिला तथा उसक निकटवर्ती मध्य प्रदेश के क्षत्रो म बोली जाती है। यह सादियो की बोली है जो यहाँ की प्रमुख जगली जाति है। डा० ग्रियसन ने अपने भारत के भाषा सर्वेक्षण म इस मालवी भाषा की बोली स्वीकार किया है[2] व उसी के अतगत रखा है। सोदवाडीभाषी जनसख्या ५९ ४३३ है।[3] इस बोली म कतिपय ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जो मीली बोलिया म मिलती हैं। नीचे हाडौती और सादवाडी का अतर दिया जा रहा है—

१ सोन्वाडी म हाडौती बोली के शब्द के आदि म पाय जाने वाल स तथा श ह म परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार हा० साळा सुण मगटा

---

१ लि० स इ पुस्तक ९ भा० २ पृ० ७९।
२ वही पृ० २७८।
३ सैंसस आफ इडिया १९६१ पृ० ८७।

सोग्यो सोद० क्रमश हाळा हुण, हगळो होईग्यो रूप म मिलते है जिनके क्रमश अर्थ है साला, सुन समस्त तथा सा गया । दूसरी ओर सान्वाडी म हाडौती स का उच्चारण छ वत होता है, यथा—साद० सुक्ळा हा० छुक्ळा ।

२ सोदवाडी मे ह्रस्व इ ध्वनि सुनाई पडती है जो हा० मे नही मिलती है यथा—सोद० क्तिरुँ वाळन्या मिले न्ना क्रमश हा० कस्या, बल मल, दन ।

३ सोन्वाडी म हाडौती की अपेक्षा दन्त्य न के मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति अधिक दीख पडती है यथा—सोद० दण मण होणा दोण्यू क्रमश हा० दन मन सूना दोन्यू ।

४ सोन्वाडी मे मालवी महाप्राण ध्वनि प्राय लुप्त हो जाती है[1] पर वह हाडौती म मिलती है । यथा—साद० लोडो (मा० ल्होडो) ती (मा० थी), दीदो (मा० दीधो) जो हा० म क्रमश ल्होडक्यो था तथा दयो रूप म मिलते हैं ।

५ सोद० मे शब्द के आदि म व के प्राय मिलने के उदाहरण मिलते हैं । यथा—सोन० वोर वच्यार वाट वणा वर हाडौती मे आदि व के उदाहरण अत्यल्प है—दो-चार हैं उपयुक्त शब्दो का हाडौनीकरण होगा—अर, बच्यार, बाट, ऊ, छोको ।

६ सादवाडी म अन्य पुरुष तथा मध्यम पुरुष के सवनाम हाडौती से भिन्न होते है । यथा—साद० वणा वी थी थे क्रमश हा० हा ऊ वे तू तथा था ।

७ सोद० मे अस्तिवाचक क्रिया के वतमान निश्चयाथ तथा भूत निश्चयाथ के रूप क्रमश हैं है तथा हो, थो जो हा० मे क्रमश छ तथा छो रूप मे पाए जाते हैं ।

८ सोद० म अपूर्ण भूत की क्रियाओ का निर्माण हिन्दी के समान भी होता है और हाडौती के समान भी । अत उस क्षेत्र म दोना प्रकार के रूप प्रचलित हैं यथा—मू खातो थो और मू खाव थो ।

९ साद० भूत निश्चयाथ की क्रियाए हाडौती के समान यो लगाकर बनाने के अतिरिक्त एक अन्य रूप म मिलती हैं यथा—सोन० दीनो दीनो खादो, जो क्रमश हा० म ल्यो दयो खायो रूप म पायी जाती हैं । इन्ही के लिया दियो तथा खायो रूप भी साद० में प्राय सुनने म आते हैं ।

१० साद० म पूर्वकालिक क्रिया का निर्माण मालवी के समान भी होता है । उसम खाई के माज क तथा उठी के और खाई न माजी न तथा उठी न रूप प्रचलित हैं । हाडौती म इनक स्थान पर क्रमश खार माजर और खाव माजक उठ क, रूप प्रचलित हैं ।

---

[1] रि स० ० पु ६ भा० २ प० ३९८ ।

११ सान्वाडी म सयुक्त क्रियाओ के निर्माण म दोना क्रियाओ के मध्य म 'ई' ध्वनि का प्राय आ जाना इस बोली की विशेषता है। यथा—साद० आईगी हाइग्या, लेईचाल्या, लागीग्यो दईने खोवाईग्यो थो क्रमश हा० आगी, होग्यो, लेचाल्या, लागग्यो द द, गमग्या छो।

सान्वाडी म 'इ ध्वनि तो क्रियार्थक सना के मध्य मे भी मिलती है यथा—कईबो जाईवो, खाइबो जो क्रमश हिन्दी के कहना जाना, खाना के अर्थ का प्रकट करते ह। हा० म इनके स्थान पर कैवा जावो, खावो शब्द प्रयुक्त होते हैं।

१२ सोन्वाडी की प्रेरणार्थक क्रियाओ के रूप भी हाडौती से भिन्न ही मिलत हैं यथा—सान्० ग्वावाडो, हा० र्‍वाई।

१३ सादवाडी क्रियाओ के साथ 'ज का प्रयोग अदभुत मा मिलता है, जो हाडौती म नही मिलता, यथा—सोन्० पूछेज, हा फूच।

१४ सोन्वाडी म समुच्चय बोधक अव्यय के रूप म अर, वोर' तथा ने' का प्रयोग हाता है। हा० म केवल 'अर तथा 'वोर प्रचलित हैं ने का प्रयाग सान्० म गुजराती के प्रभावस्वरूप आया प्रतीत होना है।

१५ सान्वाडी के स्थानवाचक क्रियाविशेषण शब्द हाडौती से भिन्न हैं तथा बडे आकपक हैं। यथा—साद० अयाडी, क्याडी वयाडी, अनाग, उनाग क्रमश हा० अठी खटी, उठी, या वा। इनके अतिरिक्त सोन्० अठे, उठ रूप भी सुन पडते हैं।

१६ सोद० का शब्दकोश भी आकपक शब्दा से युक्त है। यथा—कितरु (कसे) अनाग (यहा), उनाग (वहाँ), कयाडी (कहा), जी (पिता), वार (वप), रोठी (रोटी) आदि। य शब्द हाडौती प्रदेश मे नही सुनाई पडते।

नीचे दो सोंदवाडी गद्य खड हाडौती अनुवाद सहित दिए जा रहे हैं—

एक आदमी के दो बेटा था। लोडका बेटा ने वणी का जी है कही के माने वाटा की रकम पात दई दो। जदी वणी का जी ने अपनी रकम पात वपया है वाट दी। थाडा दिना पाछे लोटा वेटो वणी का वाटा की रकम पात लई वेगळो चल्या गयो। वाहा वणी न वणी का वाटा की हुगली रकम पात वीगाड दी दी। अर वणी क पा काई न्हीं रयो। और वणी मूलक मे काळ पड्यो। जदी भूका मरबा लाग्यो। जदी वणी मूलक का एक हाऊ आदमी पा गयो अर वणी हाऊ आदमी ने मडूरा चरावा माल म मोकल्यो। ऊ लाचार वई ने वणी सूक्ळा थी पेट भर थो, जो सूक्ळा मडूरा के खावा को या। वणी न खावा काई नही देवे थो। जदी वणी न गम पडी जदी केवा लाग्यो के मारा जी के घणा हाळ बाळ्गी है।

हाडौती गद्य

एक आदमी क दो बेटा छा, लोडक्या बेटा न उका भाई जी सू खी क महई म्हारा बाटा की रुक्म पात द दो। जद ऊका भाई जी न आपणी रक्म पात वा मैं बाट दी। थोडा दना पाछ ल्होडक्यो बेटो ऊका बाटा की रक्म पात लेर दूर चलीग्यो। वा ऊनै ऊकी पाती की सारी रकम पात वगाड दी। अर ऊ नक कोई कोईन रयो। अर ऊ मलक मे काळ पड्यो। जद भूका मरवा लाग्यो। जद ऊ गाव का एक मला आदमी क वन गयो। अर ऊ मला आदमी न टाडा चराबा माळ म खदायो। ऊ लाचार होर ऊ चारा सू देट भर छो ज्यो चारो ढांडा क खाबा को छो। उई कोई मी खाबा न देव छो। जन ऊन गम पडी जद खबा लाग्यो के म्हारा भाई जी के घणा बलाका हाली छ।

यह दूसरा गद्याश पिडावा निवासी से श्रत लेख है—

सोदवाडी गद्य

दो ठग था वोर एक से एक जबरो थो। एक दन एक ठग के घरे दूजो ठग पावणू गयो। ऊण ने उण की हाऊ हार हमाळ करी वोर होणा की परात मे राबडी खावाडी। पावणा ठग के परात आस आईगी। उण के आपणा मण म बच्यार करयो के हाला की या परात छाना सा लई चाला। बरा छाती राबडी खाईके आपणी परात राखोडी से माज के आल्या म रख काडी। वोर दोणयाई चवरा म बईग्या वोर चलम पीबा ने लागी ग्या। डाबी चलम बसे मेल के होईग्यो। पावणा ठगने उठी के दूसरा ठग न हमाल्यो वोर कईबा लाग्यो के हाळा को हाऊ तरा से हाईग्यो।

हाडौती गद्यानुवाद

दो ठग छा अर एक स एक जबरो छो। एक दन एक ठग क धरण दूजो ठग पावणू ग्यो। ऊन ऊकी घणी आवोमगत करी अर सूना की परात म राबडी ख्वाई। पावणा ठग कै परात आस आगी। उन आपणा मन म वचार करयोक साला की या परात छान सेक ले चाला। बळा छनी रावडी खार आपणी परात बानी स मांजर आल्या मैं मल दी। अर दोयू चूंतरा प बठग्या। अर चलम पीबा लागग्या। डाबी अर चलम टाम ठकाण म मलर माग्या। पावणा ठग न उठर दूसरा ठगी समाळ्यो अर खबा लाग्या कै साळो छारी तर्रा सूं सोग्या।

मालवी तथा हाडौती का अन्तर

हाडौती प्रदेश की दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी सीमाएं मालवी भाषा न बनाई जाती हैं। डा० ग्रियसन ने मालवी को राजस्थानी भाषा की उपभाषा की एक

बोली स्वीकार करके उस पर मारवाडी जयपुरी, हाडोती आदि के साथ विचार किया है।[1] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के राजस्थानी बोलियो के वर्गीकरण के पाँच भेदो म से केवल दो—पश्चिमी राजस्थानी तथा मध्यपूर्वी राजस्थानी—को ही राजस्थानी नाम देना उपयुक्त ठहराया और इन्हे क्रमश पश्चिमी तथा पूर्वी राजस्थानी कहना उपयुक्त समझा।[2] शेष अहीरवाटी, मेवाती मालवी और निमाडी ये पछाँही हिंदी स ज्यादातर सपर्कित है या खास राजस्थानी स इस पर चरम निष्कर्ष अब तक नही निकला है।[3] अत यह स्पष्ट है कि डा० चटर्जी मालवी का राजस्थानी की[4] बोलिया के अन्तगत रखने को तयार नही हैं। वे समग्र राजपूताना और मालवा की बोलियो को एक मूल भाषा ही नहा मानत।[5] डॉ० श्याम परमार क अनुसार मालवी का विकास शौरसेनी, प्राकृत और अवती अपभ्रंश से हुआ है। अत इतना स्पष्ट है कि मालवी हाडोती की सीमावर्तिनी बोली होकर भी इस प्रकार विकसित हुई कि परस्पर काफी अन्तर रखती है। मालवी भाषी जनसख्या ११ ४२ ४७८ है।[6] नीचे दोनो के अन्तर को स्पष्ट किया जा रहा है

१ हाडोती म लघु 'इ' का उच्चारण स्वतन्त्र स्वर अथवा मात्रा किसी भी रूप मे नही मिलता जबकि मालवी मे यह स्वर दोना रूपो म विद्यमान है। मालवी के शब्द हिस्सो, दियो, मिल हा० म हॅसो, दयो मल रूप म उच्चरित होते हैं।

२ हाडोतीम शब्द के आदि 'व्' का उच्चारण प्राय नही मिलता, वह प्राय 'ब' म परिवर्तित हो जाता है जबकि मालवी मे आदि 'व' के उदाहरण मिल जाते हैं। यथा—वात वठ, विचार आदि। हाडोती म आदि म 'व' केवल कुछ शब्दो म—वाने (उनक), व्हा (वहा), वार (विलब) आदि म दीख पडता है।

शब्द के मध्य म पायी जाने वाली मालवी 'व्' ध्वनि की हाडोती म 'ब' की ओर झुकने का प्रयास करती है यथा—मे० मनावा, चरावा क्रमश हा० मनाबा चराबा।

३ हाडोती मे महाप्राण ध्वनियाँ अपना अस्तित्व किसी न किसी रूप में

---

१ नि स० इ पृ० ६ भा २, प० ५२।
२ चटर्जी राजस्थानी भाषा प० १०।
३ वही प ७८।
४ चटर्जी राजस्थानी भाषा प ७८।
५ मालवी और उसका साहित्य पृ० ११।
६ सेंसस आफ इण्डिया १९६१, प० ८५।

बनाए हुए है और उनकी प्रवत्ति श ब्द के आदि की ओर बढ़ने की देखी जाती है। जहा यह ध्वनि आदि तक नही पहुँच पाई वहाँ म ध्य म कठनालीय स्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है यथा—रेवो (रहना) स र (शहर) जा द (योद्धा) व ण (वहिन)। मालवी म य महाप्राण ध्वनियाँ अनेक शब्दों म लुप्त हो गई हैं यथा—मा० काडो अडाई, दू ध क्रमश हा० काडो ढाई दू द।

४ मालवी में प्राय ई ध्वनि सुनने में आती है जो हाडौती में इतनी प्रचुरता से नहा मिलती। मा० गया थानी हा० ग्या छा न, मा० करी दियो हा० कर दयो मा० उडाई दियो हा० उडा दयो।

५ आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में जो शब्दसकोच की प्रवत्ति देखी जाती है उस दिशा म हाडौती मालवी से आगे है जिसे क्रिया क भूत कृदत म स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—मा० गया ग्या दिया दई दो क्रमश हा० ग्यो ग्यो द्यो दे दो।

६ मालवी म कमकारक तथा सप्रदान म विभक्ति पायी जाती है, जबकि हाडौती म उसके लिए परसग मिलते हैं। मा० छोटा लडकाए वणी का पिता ने कह्यो (छोट लडके से उसके पिता ने कहा) वी ने वणीएँ नी दिया (उसने उसको नहीं दिया)। हाडौती म इन्हा वाक्यो को क्रमश इस प्रकार लिखगे—छोटक्या छोरा से ऊका बाप न क्यो ऊ न ऊई न द्या। यह प्रयोग 'रांगडी म अधिक देखन को मिलता है।

इसी प्रकार मालवी सप्तमी मे घरे' जस प्रयोग भी देखने को मिलते हैं जो स० सप्तमी गृह स सबध स्थापित किए हुए है। हाडौती म 'घरण म 'ण परसग इसा प्रकार की भ्राति उत्पन्न करता है पर हाडौती म यह परसग अपना स्वतत्र अस्तित्व बना चुका है।

षष्ठी का पितारे घरे मालवी का रूप मारवाडी वगता की याद दिलाता है। हाडौती म रे, रा की सयोगावस्था केवल सवनामा म देखी जा सकती है सनामा के साथ र रा क प्रयोग नहीं दिखाई पडत। मालवी क 'बाप र घरें क स्थान पर हा० म बाप का घरण प्रयुक्त होगा।

७ मालवी वाली म वीन अणा ने आदि निश्चयवाचक सवनाम हाडौती उन ईन रूप म प्रयुक्त होते हैं। य प्रयोग रांगडी म अधिक देखन को मिलत हैं। मालवी म कहीं-कहीं मूर्धन्य अनुनासिक हाडौती ध्वनि ण क स्थान पर दन्त्य अनुनासिक ध्वनि क प्रयोग भी देखन को मिलत हैं।

८ सत्तावाचक क्रिया क वतमान निश्चयाथ तथा भूत निश्चयाथ रूपो म दोनो बोलियो म स्पष्ट अतर है। मालवी म य क्रमश है हूँ तथा था थो मिलत हैं जबकि हाडौती म य रूप क्रमश छ छू तथा छा, छो रूप म प्रयुक्त होते हैं।

९ मालवी म भूत अपूर्ण निश्चयार्थ भूत क्रिया क वतमानकालिक कृदन्त म

अस्तिवाचक सहायक क्रिया का भूत निश्चयार्थ रूप जोडकर बनाया जाता है जब कि हाडौती मे इस रूप को वतमान निश्चयार्थ क्रिया के साथ अस्तिवाचक क्रिया के भूतकालिक रूप को सहायक क्रिया रूप म जोडकर बनाया जाता है। यथा—मा० जाती थी हा० जाव छो, मा० खाती थी, हा० खाव छा।

१० मालवी म भविष्य निश्चयार्थ वतमान निश्चयार्थ क्रिया के साथ गा' जोडकर बनाया जाता है जो मारवाडी क समान वचन तथा लिंग मे नहीं परिवर्तित होता।[1] हाडौती क्रिया म भविष्यत निश्चयार्थ का निमाण भी इसी प्रकार होता है पर यहाँ क्रिया लिंग वचन के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, यथा म्हूँ जाऊँगा, व जावगा, थू जावगा।

११ पूर्वकालिक क्रिया का निमाण मालवी म हाडौती से भिन्न प्रकार से होता है। मालवी के जाय, हुइ, बाची रूप हाडौती के जार, हार, बाँचर रूपो से स्पष्टतया भिन्न है।

१२ मालवी म भूतकालिक कृदत के लीधो, दीधो, किधो रूप बडे आकर्षक है जो हाडौती म नहीं मिलते। गुजराती तथा मेवाडी मे भी इसी प्रकार के रूप देखने को मिलते हैं। पर यह भूतकालिक रूप बहुत कम क्रियाओं तक सीमित हैं अन्यथा तो किया, दिया तथा कभी कभी ग्यो द्यो आदि रूप ही, जो हाडौती के समान है प्रचलित हैं।

१३ मालवी के समुच्चयबोधक अव्यय ने पर गुजराती का प्रभाव है। वह गुजराती के अने का घिसा हुआ रूप है। हाडौती म इसके स्थान पर 'अर का प्रयोग होता है जो हिन्दी क' और' का घिसा रूप सा प्रतीत होता है।

नीचे दो मालवी गद्य तथा उन्ही के हाडौती रूपातर प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

१ मालवी गद्य

काई आदमी के दो छोरा था। उनम स छोटा छोरा ने जई के बाप क कियो के दाय जी म्हारे धन को हिस्सो दईने और ओने उनम माल ताल का बाँटा करी दियो। थोडाई दन म छाटो छोरो सब अपनो माल मतो लई ने काई दूसरा देस चल्या ग्यो और वा आखाचन मौज मे अपनी धन उडाई दयो।[2]

हाडौती गद्यानुवाद

कोई आदमी के दो छोरा छा। वा मैं स छोटा छोरा न जार बाप सूं थी क भाई जी मई धन को बाटा द दो अर ऊनै वाम मालताल को बाँटा कर न्या।

१ नि स इ पु ६ भा० २ प० ५२।
२ डॉ० श्याम परमार मालवी और उसका साहित्य पृ० १५

छणी स्याव दना म छोटो छोरो सदो आपणू मालताल लेर मस्यापरदेस म चली ग्यो अर वाँ चन मौज म आखो धन उडा द्यो।

२ मालवी गद्य

एक अन्य उदाहरण आदश मालवी रा दिया ज. रहा है

'काल कुवार सुदी पाँच का दन आपकी चिटठी म्हारे मिली। बाँची ने गद गद हुई ग्यो न जदे मालम पडी कि अरे योतो कवि समेलन को नेवतो है। अबे क्या म्हार से मेवाडो आँदा के जाण आँख मिली न मय्या पर-कटया पछी से पाँख मिली।'[1]

हाडौती गद्यानुवाद

काल आसोज सुद पाच क दन आपकी छूती मई मली। बाच र गद गद होयो। अर जद मालूम पडी क यो तो कवि समेलन को नोतो छै अब म्हस क्यू रवावो छो माया जाण आदाई आरया मलगी अर पाखडाहीण पछी ई पाखडा मल ग्या।

बुन्देली तथा हाडौती का अन्तर

बुदेली बाली हाडौती की उत्तर-पूर्वी सीमा बनाती है। यह पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा है। बुदेले राजपूतो की प्रधानता के कारण ही इस प्रदेश का नाम बुदेलखण्ड पडा तथा इसकी भाषा बुदेली कहलाई। इस बोली का क्षेत्र बुदेलखड है। कही कही वह इस क्षेत्र के बाहर भी बोली जाती है।[2] बुदेली क्षेत्र विस्तृत है। इस क्षत्र म बुदली की अनेक बोलिया प्रचलित हैं। इसके बोलनेवाला की सख्या २२०६५ है।[3] नीचे जो हाडौती और बुदेली का अन्तर बताया जा रहा है उसम आदश बुदेली को ही आधार मानकर चला गया है।

१ बुदेली म ह्रस्व इ' ध्वनि प्रचुरता से प्रयुक्त हाती है जो हाडौती म नही मिलती, यथा—बु० बिटिया बिरोबर चिरइया भानिज क्रमश हा० बेटी, बरयाबर चडी भाणेज।

२ बुदेली मे मूधन्य अनुनासिक व्यजन ध्वनि नही मिलती। वहाँ इसके स्थान पर दन्त्य अनुनासिक ध्वनि का प्रयोग मिलता है। बु० भानिज, अपनी तेलनी क्रमश हा० भाणेज, आपणो, तेलण।

३ हाडौती की ड ध्वनि बुदेलखडी म प्राय 'र म परिवर्तित हो जाती है। यथा—हा० घोडो दोडर पडयो क्रमश बु० घुरवा दौरके परो।

---

१ डॉ० श्याम परमार मालवी और उसका साहित्य पृ० १ २।

२ ति मो मा० सा० उपादघात पृ १३१।

३ सेन्सस आफ इडिया १९६१ प ३६।

४ अकारण अनुनासिकता के उदाहरण बुदेली म हाडौती की अपेक्षा अधिक मिलत हैं। यथा—बु० एतरा उठाकें नचें, पाकें (हिं० इस तरह उठाकर, नीचे, पाकर)।

५ बुदेली मे शब्दो के बहुवचन बनाने के लिए ब्रजभाषा की भाँति अन प्रत्यय लगाया जाता है। हाडौती म इसका प्रयोग नही मिलता। यथा—बु० घोरन लरकन, क्रमश हा० घोडा, छारा (लडका)।

६ बुदली के पुरुषवाचक सवनामो के रूप हिन्दी के अधिक निकट हैं, पर हाडौती से कुछ दूर हैं।

	बुदली	हाडौती
उत्तमपुरुष	मे म हम	म्हू, म्हा मैं
मध्यमपुरुष	तू तै तुम	तू, था, त
अयपुरुष	बो, ऊ व	ऊ, व

७ बुदेली म कभी कभी कर्ता के साथ 'ने परसग का प्रयोग एक विचित्र ढग से होता है, यथा—वाने बठो (वह बठा), ऐसा प्रयोग हाडौती में नही मिलता। इसके स्थान पर हाडौती मे कहेगे—'ऊ बठयो'।

८ बुदेली म कमकारक का 'खो परसग हाडौती म नही मिलता। सम्बधकारक के उत्तमपुरुष तथा मध्यमपुरुष के भी रूप मोको, मोरो मोनो, हमको, हमाओ तथा तोको तरो, तोरी, तोनो, तुमको, तुमाओ रूप बडे आकषक हैं तथा हिन्दी से स्पष्टत भिन्न हैं। हाडौती म म्हारो, म्हाको तथा थारो, थाको इनक समकक्ष रूप हैं।

९ बुदेली म अस्तिवाचक क्रिया अपने वतमान निश्चयाथ तथा भूत निश्चयाथ रूपो म हाडौती से स्पष्ट भिन्नता रखती है। बु० के वतमान निश्चयाथ के रूप हैं आय तथा भूत के हतो जो हा० म क्रमश छ छो रूप म मिलत हैं।

१० बुदेली के सामान्य भविष्यत काल के रूप हे हा जोडकर भी बनाए जात हैं, यथा—बु० मारिहो मारिहै चलिहै आदि। ये रूप हा० मे नही मिलते। भविष्यकाल क दूसरे रूप दोनो मे समान ढग स बनाए जात हैं।

१२ बुदेली म वतमान अपूण निश्चयाथ मूल क्रिया के वतमानकालिक कृदन्त तथा अस्तिवाचक क्रिया के वनमान निश्चयाथ के योग स सम्पन्न होता है जबकि हाडौती म मुख्य क्रिया के वतमान निश्चयाथ तथा अस्तिवाचक क्रिया के वनमान निश्चयाथ क रूप से बनता है, यथा—बु० मारत हो, हा० मारूँ छू।

१२ बुदेली म भूत अपूण निश्चयाथ का निर्माण वतमानकालिक कृदन्त तथा अस्तिवाचक क्रिया का भूत निश्चयाथ रूप क योग स होता है जबकि हाडौती म यह मूल क्रिया क वतमान निश्चयाथ तथा अस्तिवाचक क्रिया क भूत

निश्चयार्थ के रूपों को जोडकर बनाए जाते हैं। यथा—बु० मारत हतो, हा० मार छो।

१३ बुंदेली पूर्वकालिक क्रिया का अंत प्राय 'के' से होता है जबकि हाडौती क्रिया का अंत प्राय 'र' में होता है और कभी कभी 'क' में भी होता है यथा—बु० मारके, उठके हा० मारर या मारक, उठर या उठक।

नीचे बुंदेली गद्य दिए जा रहे हैं। इनमें से प्रथम गद्य शिवसहाय की जल कथा बुंदेली लोककथा से उद्धृत है।

बुंदेली गद्य[1]

एक समय की बात है। कौन ऊ नगर में एक राजा हतो। ऊके राज में रयत के लोग पेट भर खात और नींद भर सोउत हते। कोउ खों काऊ बात की अड़चन ने हती।

ओई शहर में राजा के महल के लिगां एक जसोदी की टपरिया हती। ऊके घर में मताई बेटा दोई प्रानी हते। बेटा स्यानो हो गव तो जसोदी तो प्राय उए गाव बजाव को बडो शोक हतो। जब मनमें हुलास उठे तब ई सारंगी उठाके गाउन बजाउन लगत तो। राजा साब जसोदी को गावो सुनके मगन हो जात ते। घटों सुनत रत ते। राजकाज से फुरसत पाके जब राजा रातखों अपने महल में सोबेखों आउत हते तो पलका पे परे परे जसोदी की तान सुनकें दिन भर की थकान भूल जात ते।

हाडौती गद्यानुवाद

एक बगत की बात छ। एक सहर म एक राजो छो। ऊका राज मैं सब लोगाई भर पेट मल छो अर सुख की नींदा सोव छा। की भी काई बात की तकलीफ कोई न छी।

ऊ सहर म राजा का महल क कने जसोदी की टापरी छी। ऊका घर म माई बेटा दो जणा छा। बेटा जवान होग्यो छो। जसोदी गाणा बजाबा को घणू साव छो। जद मन म आव ऊई बगत सारंगी लेर गावा-बजावा लाग जाव छो। राजा जी जसोदी को गावो बजाबो सुणर मगन हो जाव छा। घणी बेर ताई सुणबो कर छा। राजकाज नमटार जद राजाजी आपणा मला मैं सोबा बई आव छा तो पालक्या प पडया पडया जसोदी को अलाप सुणर आखा दन की थकान भूल जाव छा।

एक अन्य बुंदेली गद्य जो एक ग्वालियर निवासी से सुनकर लिखा गया है—

---

1 हमारी लोककथाएं पृ० ६।

हमने दो जोरी परेवा पाल लए। पइले जोरे की परेविन अपने जोरा के सगे हलके म हमारे गाव के सहरिया ल्याय थे। सहरियन को तो अपने रहबे के लाय मडया नोनी नई होत तो वे परवन को कहा त लाय बोर का राखें। उन दोउअन का अपने मिलवेवारे चमार को वे दो जोरा दे दये। ई जोरा को परेवा बिलैया ने खालऊ।

हाडौती गद्यानुवाद

म्हन दो जोडी कबूतरपाळ ल्या। फलका जोडा की कबूतरी आपणा जोडा की लर म्हाका गाव का स रया हलका मैं लाया छा। स रइयाँ के पास तो आपण रबा केई भी छोकी टापरी न होव तो वै कबूतरा नी खा स लावै अर खा राख। वान दो याई आपणा मलबा हाळा चमार इ वै जोडा दे दया। ई जोडा को कबूतर बल्ली खागी।

सीपरी तथा हाडौती का अन्तर

डा० ग्रियसन ने अपने 'भारत के भाषा सर्वेक्षण में सोपरी या श्योपरी बोली को हाडौती की उपबोली स्वीकार किया है[1] तथा हाडौतीभाषी जनसख्या के कुल आकडो मे सीपरीभाषी जनसख्या के आकडे भी सम्मिलित किए हैं। पर इसी ग्रथ म विद्वान लेखक ने सीपरी पर स्वतन्त्र रूप स भी विचार किया है। यद्यपि इस विवेचन म विस्तार अल्प है पर इस विवेचन से डा० ग्रियसन का उपयु क्त बोली के स्वतन्त्र अस्तित्व की ओर झुकाव स्पष्ट प्रतीत होता है।

वस्तुत सीपरी एक स्वतन्त्र बोली स्वीकार की जा सकती है जिसे ग्वालियर निवासी श्योपुरी कहते हैं तथा कोटानिवासी चबल की सहायक नदी 'सीपे के क्षेत्रवाली वाली होने से 'सिपरी कहते हैं[2] यह मूल रूप से मध्य प्रदेश के श्योपुर परगने की बोली है जो उस परगने के समीप के क्षेत्रो म भी बोली जाती है। यह बोली बुदली तथा डांगी बोलिया से प्रभावित है।[3] सीपरी-भाषी केवल ४८७ व्यक्ति हैं।[4] अतएव हाडौती से इसका अतर स्पष्ट देखा जा सकता है।

१ सीपरी म ह्रस्व इ का प्रयोग प्राय मिलता है जो हाडौती मे नहीं मिलता, यथा—सी० दखि, गियो, क्रमग हा० दख ग्यो।

---

१ लि स ई० पु ६ भा० २ पृ २०३।
२ वही पु ६ भा० २ प २१६।
३ वही।
४ सेसस ऑफ इंडिया १९६१ पृ० ८७।

२ सीपरी म 'ऐ' तथा 'औ' स्वरो की रक्षा हुई है जो उस पर व्रज या बुदेली के प्रभाव का परिणाम है। हाडौती मे 'ऐ' तथा 'औ' का प्रयोग नही दिखाई देता यथा—सी० और मैं, पाछ क्रमश हा० अर म्हूं फाचे।

३ हाडौती मे प्राणध्वनि शब्द के आदि की ओर बढने की प्रवृत्ति रखती है और कही वह कठनालीय स्पश के रूप म विद्यमान है पर सीपरी म उसका स्थान हिन्दी के समान ही बना हुआ है यथा—सी० कहाणी, वहाँ नाहर, ऊभो, क्रमश हा० ख्याणी वा या हा न्हार ऊबा।

४ सस्कृत की इ वर्गीय ध्वनियाँ सीपरी मे लुप्त होने के अनेक उदाहरण मिलते हैं हाडौती म उन्होने स्थान या वेग बदलकर अपना अस्तित्व बना रखा है यथा—सी० चारा बचारी क्रमश हा० च्यारा बच्यारी।

५ सीपरी म पुरुषवाचक सवनाम हाडौती से भिन्न मिलत हैं यथा सी० हूँ, मोको माइ क्रमश हा० म्हू म म्हई।

६ सीपरी म कम तथा सम्प्रदान कारको म प्रयुक्त 'कू' परसग मिलता है पर हाडौती मे ई न और के ताइ प्रयुक्त होते हैं यथा—सी० मोकू मोको, तोको रामकू क्रमश हा० मई, म्हारे ताई थई थार ताइ राम न।

७ सीपरी मे अस्तिवाचक क्रिया के वतमान निश्चयाथ तथा भूत निश्चयाथ के रूप क्रमश है व 'हा हैं जबकि हाडौती म छ छा है।

नीचे सीपरी का गद्याश दिया जा रहा है—

सीपरी गद्य

एक सुआडयो ओर एक सुआडी एक ठौर रहवो करे हा। एक दिन वाकू प्यासी लागी। जद सुआडी ने सुआडया सू कही पाणी पीवा चाला तू कहाणूया भी जाणे है वहाँ एक नाहर की आदर है। तू कोई कहाणी जानतो होव तो आपण पाणी पिया। हू प्यासी मरू छू। या कहर व पाणी की ठौर प गया वहाँ जार सुआडी ने पूछो तू कोई कहाणी जाण है। ज्यू ही वे पास आया वांकू नाहर ने देखि लिया।

हाडौती गद्यानुवाद

एक स्वाल्यो अर एक स्वाली एक ठौर र वू कर छा। एक दन उई तस लागी। जद स्वाली न स्वाल्या सू क्ही पाणी पीवा चालां। तू ख्याणया भी जाण छे। वा एक न्हार की थान्द छ। तू कोई ख्याणी जाणतो होव तो आपण पाणी प्या म्हूँ तसाया मरूँ छू। या क र व पाणी की ठौर प ग्या। वा जार स्वाली न पूछी क तू कोई ख्याणी जाण छ। जरयाई व गोड आया उँई न्हार न देख ल्या।

डागभाग तथा हाडौती का अन्तर

हाडौती की उत्तरी सीमा डागभाग बनाती है। डागभाग जयपुर जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में कोटा जिले के उत्तर में तथा करौली के दक्षिणी सीमावर्ती क्षेत्र में बोली जाती है। इस पर जयपुरी का डागी की अपेक्षा अधिक प्रभाव है। हाडौती बोली से इसका अन्तर इस प्रकार है—

१ हाडौती में ह्रस्व 'इ, ऐ' व 'औ' स्वर ध्वनियां नहीं मिलती जबकि डागभाग में ये ध्वनियां मिलती हैं। यथा—डाग० रिप्यो आपक, कैंवो नौकर क्रमश हा० ग्यो आपक खवो नोकर।

२ डागभाग में जहा हाडौती मूर्धन्य ळ प्रयुक्त होता है वहा भी वत्स्य 'ळ' प्रयुक्त होता है यथा—हा० रैवाहाळा डाग० रवाला।

३ डागभाग में मूल महाप्राणध्वनि अनेक शब्दों में लुप्त हो गई है। हाडौती में यह ध्वनि किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व प्राय बनाए हुए है यथा—डागभाग बूको बुसी क्वाऊँ चायना, जीव क्रमश हा० भूको खुमी ख्वाऊँ, छायना जीभ। डागभाग में कुछ शब्दों में महाप्राणध्वनि हिन्दी शब्दों के समान स्थान बनाए हुए हैं पर हाडौती में इसकी प्रवृत्ति आगे बढने की ओर दिखाई देती है यथा—डाग० महाराज, हा० म्हाराज।

४ डागभाग के सर्वनाम हिन्दी के अधिक निकट हैं। इसमें तुमारो मेरो उन आदि प्रयोग मिलते हैं पर साथ ही मोकू जसे ब्रज प्रयोग भी दिखाई देते हैं। हाडौती में इनके स्थान पर क्रमश इन सर्वनामों का प्रयोग मिलता है—थारो, म्हारो वा तथा मई।

५ संज्ञा शब्दों के बहुवचन बनाने में ब्रजभाषा की प्रवृत्ति से डागभाग प्रभावित है, पर हाडौती के संज्ञा शब्दों के बहुवचन भिन्न प्रकार से बनाए जाते हैं डाग० खेतन चाकरन नोकरन, बेटन क्रमश हा० खेता चाकरा नोकरा बटा।

६ डागभाग में कर्म तथा सम्प्रदान परसर्गों में कू का प्रयोग बहुतायत से होता है और हाडौती में ई के प्रयोग का प्राचुर्य है। यथा—डाग० मोकू नौकरन कू क्रमश हा० मई नौकरानई।

७ डागभाग में अस्तित्ववाचक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ और भूत निश्चयार्थ में दो-दो रूप मिलते हैं। पहले हैं हूँ हा हो और दूसरे छै छू छा छो आदि, जिनमें से प्रथम का व्यवहार अधिक होता है तथा दूसरे रूप कम प्रयुक्त होते हैं। हाडौती में दूसरे प्रकार के रूप ही प्रचलित हैं।

८ डागभाग में पूर्वकालिक क्रिया के अन्त में कर के अधिक मिलते हैं और मर अत वाले कम, पर हाडौती में इसके विपरीत प्रयोग मिलते हैं, दोनों

सवनामो के लिये होता।[१] यहाँ यह 'कि' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा, स्यार बोल्यो अस आपां तो मडस्या (सियार ने कहा कि हम तो बनेंगे)।

उपर्युक्त अन्तर को स्पष्ट करने के लिए नागरचाल का एक गद्य और उसका हाड़ौती अनुवाद दिया जा रहा है—

नागरचाल गद्य

जद फर दूसर दन ऊ स्याळर हरण मळ्यो तो क आज तो तू थारा मायळा न बूज्यायो। अब आपा दोन्यूं मायळा मडां। जद हरण बोल्यो अर माई स्याळ म्हारो मायँळो तो नटग्यो अस तू मायळो मत मडे। जद स्याळ बोल्यो—अस आपातो मडस्या। जद स्याळ की आपणका ऊँकी लार लार ऊई रोखडा नीच गीयो जठ कागळो र हरण बठ छा। जद हरण कागळा न फेर बूजी क यो तो मान कोन। मायळो मडबा बेई आग्यो। जद कागळो बोल्यो तू म्हारी मान छ तो इसू मायळो मत मडे स्याळ की जात दगाबाज छ। दगो करर तेने कोई दन मरा घलासी।

हाडौती गद्यानुवाद

जद फेर दूसर दन ऊ स्वाळयो अर हरण मल्यो। तो खी आज तो तू थारा मायला स पूच्यायो। अब आपण दोन्यू मायला बण जावा। जद हरण बोल्यो अर माया स्वाळया म्हारो मायळो तो नटग्यो क तू मायलो मत बण। जद स्वाळयो न खी क आपण तो बणगा जद स्वाळयो भी आँथणका ऊँकी लेर लेर ऊई रुखडा क तळ ग्यो ज्या कागलो अर हरण बठ छा। जद हरण कागला न फर फूची क यो तो मानई कोयन, मायलो बणबा बेई आग्यो। जद कागला न खी तू म्हारी मान तो इको मायलो मत बण। स्वाळयो की ज्यात दगाबाज छ। दगो करर तइ कोई दन मरा ह्वाक्गो।

---

[१] लि स इ पु ६, भा० २ प० १६१

हाडौती का खडीबोली के उच्चारण पर प्रभाव

प्रत्येक भाषा भाषी के उच्चारण की निश्चित विशेषताएँ होती हैं जो वहाँ की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व वंशानुगतिक परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। इसलिए वहां कुछ तो नवीन स्वर और व्यंजन ध्वनियां पायी जाती हैं और कुछ का अभाव रहता है तथा अनेक ध्वनियों का ठीक वही उच्चारण नहीं मिलता है जो इतर भाषा भाषी क्षेत्र में पाया जाता है। पर यह अन्तर इतना सूक्ष्म होता है कि सामान्य रूप से हमारे कान उसे पहिचान सकने में असमर्थ होते हैं। उच्चारण की दृष्टि से भाषा के दो पक्ष होते हैं—श्रोतृपक्ष व वक्तृपक्ष। दोनों पक्षों में किसी अन्य भाषा की ध्वनियों को अपनी मातृभाषा की ध्वनियों के सांचे में ढालकर ग्रहण करने तथा व्यक्त करने की स्वाभाविक भूल हो जाया करती है। इसीलिये हाडौती भाषी व्यक्ति हिन्दी ध्वनियों को ग्रहण कर जब उनका उच्चारण करता है तो उसमें मूल से इतना सूक्ष्म अन्तर रहता है कि वहाँ तक हमारा मस्तिष्क सहसा पहुँचता भी नहीं है।

हाडौती का क्षेत्र हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत ही है। इसलिये इस क्षेत्र में हिन्दी का प्रचार प्रसार इतनी द्रुत गति से हो रहा है कि नगरों से हाडौती को निष्कासन-सा प्राप्त होता जा रहा है, पर गाँवों में यह अभी पूर्णरूपेण सुरक्षित है। गाँवों की जनसंख्या से नगरों का निर्माण होता आया है। इसलिये नागरिकों की हिन्दी पर भी हाडौती का प्रभाव संस्कार रूप में देखा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि हाडौती का प्रभाव शिक्षित, अर्द्धशिक्षित और अशिक्षित सभी वर्गों के लोगों की खडी बोली के उच्चारण पर देखा जा सकता है, पर इनमें भी स्त्री वर्ग की खडीबोली पुरुष-वर्ग की तुलना में हाडौती से अधिक प्रभावित है। इस निबन्ध में केवल उसी प्रभाव को लिया गया है जो सामान्यतया इस क्षेत्र के सभी वर्गों की खडीबोली की ध्वनियों के उच्चारण पर पाया जाता है। यहाँ व्यक्तिगत त्रुटियों की ओर संकेत करना अभीष्ट नहीं है।

हाड़ौती म 'इ' स्वर ध्वनि का अभाव है। इसका प्रभाव खड़ीबोली की उस शब्दावली पर नहीं पाया जाता है जहाँ शब्द ारम्भ म यह ध्वनि होती है। खड़ीबोली म कुछ ऐसे शब्द है, जिनम एक स अधिक बार यह स्वर ध्वनि रहती है और जो हाड़ौती म अति प्रचलित है। उनम पर इ ध्वनि का स्थान या तो अ ध्वनि ले लेती है या वह लुप्त हो जाती है, जस इन्द्रा गाधी (इदिरा गाधी), किरकरी (किरकिरा) फिटकरी (फिटकिरी), सीसोद्या (सीसोदिया), परिस्थतया (परिस्थितियाँ), राग रागिनी (राग रागना) आदि। पर जो शब्द सामान्य व्यवहार म अल्प प्रचलित है या अप्रचलित हैं उनका उच्चारण यथावत् होता है, जस—शिथिल (शिथिल)।

सस्कृत म ऋ का उच्चारण कुछ भी रहा हो, पर हिन्दी म वह रि के समान उच्चरित होती है। यह जब स्वतन्त्र रूप म शब्द के आरम्भ म प्रयुक्त होती है तब तो उसका उच्चारण हाड़ौती क्षत्र म भी हिन्दी क समान हो जाता है पर जब यह किसी व्यजन के साथ मिलकर आती है तो इसका उच्चारण कुछ भिन्न प्रकार होता ह, यथा ह्रष्ट (हृष्ट) ह्रदय (हृदय), क्रष्णा (कृष्णा), पर मात प्रेम जस शब्दो म इसका वही उच्चारण होता है।

हाड़ौती म ए तथा औ स्वर ध्वनियाँ नहीं मिलती है। इसलिय जहाँ हिन्दी मे ऐसी ध्वनियाँ पाई जाती है उनके स्थान पर ग्रामाणा को हिन्दी मे तो क्रमश ए' और 'ओ ध्वनियाँ प्रयुक्त होती है और शिक्षित व्यक्तियो का उच्चारण दोनों क मध्य का होता है, पर यहाँ भी झुकाव हाड़ौती ध्वनियो की ओर ही रहता है। जस एनक (एनक) कसा (कसा), ग्रासत (औसत), सो (सौ), चोदा (चौदह), प्रायोगिक (औद्योगिक) आदि। कुछ शब्दो म ए विलम्बित अऽ रूप म उच्चरित होता है—जस हऽ (है)।

उपर्युक्त दोनो स्वरो क उच्चारण म अन्तर का सम्बन्ध उनके प्रति या स्वरूप प्रयोग स भी नहीं दिखाई देता है। जो शब्द समूह हाड़ौती म भी लोक व्यवहार म प्रचलित है वहा तो यह अन्तर स्पष्ट रूप स दखा जा सकता है।

हाड़ौती क्षत्र क कुछ शब्दो म ए तथा ओ दीर्घ स्वर ध्वनियो का ह्रस्व उच्चारण भी पाया जाता है, जस—जावागा (जावगा) खावागा (खाओगा)। सभवत यह प्रवृत्ति हिन्दी की भी है, जो उसको वतनी स मेल नहीं खाती है।

हाड़ौती भाषी हिन्दी शब्दो म अकारण अनुनासिकता का आरोप कर दते हैं, जो हाड़ौती उच्चारण की प्रवृत्ति है। यह प्रवत्ति तो इतनी व्यापक और स्पष्ट है कि सभी स्वरो पर इस स्पष्ट रूप स सुना जा सकता है, जसे—काँच (काच), चाँवल (चावल), मीरा (मारा) भूँट (भूठ), घाँस (घास) आदि।

हाड़ौती भाषियो क लिय शब्दान्त या शब्द मध्य म अह ध्वनि अपरिचित है। इसलिय व हिन्दी क एस शब्दो म जहाँ एसी ध्वनियाँ पायी जाती है या तो

उसे 'ग्रा' कर देते हैं या 'ए' कर देते हैं, यथा—बारा (बारह), तेरा (तेरह), चौरा (चौदह) मसले उद्दीन (मसलहद्दीन)। ऐसे उच्चारणा को एन० सी० सी० की परेडों के अवसर पर क्रमश सख्या बोलते कैडेटों के मुख स सहज ही सुना जा सकता है।

जहाँ हिन्दी शब्दो मे 'उग्रा' ध्वनियाँ आती हैं (कभी कभी वैकल्पिक रूप से 'उवा' भी) वहाँ हाडौती को केवल 'उवा' ध्वनि प्रिय है। इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दी के अनेक शब्दो का जहाँ उक्त रूप पाया जाता है वहाँ हाडौती क्षेत्र मे उनका भिन्न उच्चारण मिलता है जसे—कुवारा (कुग्रारा) पुवा (पुग्रा), कुवाँ (कग्राँ, वैं० रूप कुवा)।

यही बात 'उए', 'ग्राए' ध्वनियो के सम्बन्ध मे भी है। उनके स्थान पर इस क्षेत्र का उच्चारण 'उवे, ग्रावे की ओर झुका हुआ है जसे—हुवे (हुए) जावे (जाये)।

'ह' खडीबोली म सघोष महाप्राण स्वरयन्त्रमुखी सघर्षी व्यजन ध्वनि है पर हाडौती म यह अघोष महाप्राण स्वरयन्त्रमुखी सघर्षी व्यजन ध्वनि है। इसलिए इस क्षेत्र मे इसका अघोष उच्चारण ही होता है। यहाँ इस ध्वनि का हिन्दी शब्दो में पूर्ण उच्चारण शब्द के आदि मे होता है, मध्य या अन्त म पाये जाने वाले ह की महाप्राणता अनेक शब्दो मे या तो लुप्त हो जाती है या ईषत हो जाती है (कठनालीय स्पृष्ट ध्वनि मे भी बदल जाती है), जसे—कग्र (कह) तुमारा (तुम्हारा) धोका (धोखा) भूट (भूठ)।

सिह शब्द म यह ग' मे भी बदल जाती है जसे—सिग (सिंह)।

हाडौती के अनुनासिक व्यजनो म 'ण'-बहुलता है इसलिए तनिक प्रसाव धानी से शिक्षित व्यक्ति भी न' के स्थान पर 'ण का प्रयोग बोलचाल मे कर जाते हैं जसे—मीणा (मीना) काणा (काना) आदि।

हाडौती बोली म एक शब्द म दो महाप्राण् व्यजन ध्वनियाँ पास-पास नही रहती हैं। यदि मूल म ऐसी ध्वनियाँ होती हैं तो उनमें से पर ध्वनि की महा प्राणता लुप्त हो जाती है। उसका इस का प्रभाव हिन्दी शब्दो के उच्चारण म स्पष्ट रूप स देखा जा सकता है जैसे—भूट (भूठ), धन्ना (धन्धा) भाबी (भाभी) ढीट (ढीठ)।

हाडौती भाषी हिन्दी शब्दों म तीन भिन्न ध्वनियो—श ष व स के स्थान पर केवल श व स को ही स्वीकार करते हैं (यद्यपि हाडौती बोली म केवल एक भिन् ध्वनि स है)। इस स्वीकृति का परिणाम यह हुआ है कि शेष ष ध्वनि को अन्य दो भिन् ध्वनियो म से किसी एक के द्वारा व्यक्त होना पडता है (यह प्रवृत्ति हिन्दी की भी है)। जसे—शण्मुख (षण्मुख) शटकोण (षटकोण), पर जहाँ शिक्षण का प्रभाव है वहाँ सण्मुख या सटकोण शब्द भी सुने जाते हैं।

संस्कृत 'ञ' व्यंजन का संयुक्त व्यंजन रूप में शुद्ध उच्चारण न हिन्दी में होता है और न हाडौती में। दोनों के क्षेत्रों में इसके स्थान पर 'न' उच्चरित होता है, यथा—पन्जा (पञ्जा), चन्चु (चञ्चु)। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजन 'ण' का उच्चारण भी 'न' ही दोनों में होता है यथा पन्डित (पण्डित)।

हाडौती में 'ळ' व्यंजन पाया जाता है, जो हिन्दी शब्दों में नहीं मिलता है। हाडौती के इस व्यंजन ने हिन्दी शब्दों को अधिक प्रभावित नहीं किया है। पर कुछ शब्दों में यह उच्चारण सुना जा सकता है—उधार लिये हुए शब्दों में या ऐसे शब्दों में जहाँ दन्त्य 'ल' से पूर्वगामी व्यंजन मूर्द्धन्य श्रेणी का हो, जैसे—कळकळती विरळा (विरला)। कभी कभी असावधानी से ऐसे शब्द भी शिक्षितों के मुख से निकल जाते हैं—चावळ (चावल), दाळ (दाल) आदि।

हाडौती बोली में 'मास्टर साहब' का उच्चारण गाँवों में 'माटसाब' होता है पर यहाँ की खड़ीबोली का उच्चारण इससे भिन्न है। वह है—मास्टर साब। यह उच्चारण उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल है, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

हिन्दी में अंग्रेजी के अनेक शब्द आये उनके साथ उसकी कुछ ध्वनियाँ भी आई। वहाँ ऐसी नवागत ध्वनियों के लिये कुछ लिपि चिह्न भी स्वीकार कर लिये गए। ऐसी ध्वनियों से हाडौती भाषियों का परिचय नहीं था। इसलिये जहाँ अशिक्षा या अर्द्धशिक्षा है वहाँ ऐसी ध्वनियों का निकटतम हाडौती ध्वनियों के रूप में उच्चारण किया जाता है जैसे—फुटबाल या फुटबोल पोस्ट आफिस या पोस्ट ओफिस आदि।

हाडौती शब्दों में स्वराघात प्रायः शब्दारम्भ की ओर रहता है। इसलिये पूर्वगामी स्वर के उपरान्त दीर्घ समस्वर हुआ तो पूर्व का लोप हो जाता है। इस प्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी शब्दों के उच्चारण पर भी देखा जा सकता है, यथा—न्हाकर (नहाकर), म्हाराज (महाराज) आदि।

हाडौती क्षेत्र में कुछ शब्दों में वर्तनी के भ्रामक ग्रहण या अशुद्ध वर्तनी ने भी उच्चारण भ्रम उत्पन्न किया है। वे शब्द हैं—विद्यार्थी, सहस्र, अनुगृहीत आदि। इसके उच्चारण हाडौती क्षेत्र में क्रमशः विध्यार्थी, सहस्त्र और अनुग्रहीत होते हैं। 'विद्यार्थी' के विध्यार्थी उच्चारण का जनक उसका लिपि चिह्न 'द्य' है जिसे विद्यार्थी भ्रम से 'ध' और 'य' का संयोग समझ लेते हैं और फिर ऐसी समझवाले अध्यापक बनकर अपनी समझ को समझ-बूझ के साथ नयी पीढ़ी को विरासत रूप में सौंपते रहते हैं। दूसरे शब्दों में पुस्तकों तक में पाई जाने वाली अशुद्ध वर्तनियाँ अशुद्ध उच्चारण का कारण बनी हैं। ऐसी पुस्तकों में अध्ययन से विद्यार्थियों में इतना दुराग्रह बढ़ जाता है कि वे अध्यापक द्वारा बताये गये संशोधन को भी पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं करते हैं।

हाडोती की प्रवत्ति असयुक्त यजना के प्रयोग की ओर है और जहाँ उसमे व्यजन सयोग पाया जाता है उसकी अपनी प्रवत्ति है। इसलिय जब हिन्दी की सयुक्त व्यजन ध्वनियो स हाडोती भाषी का प्रथम परिचय होता है तो उनके उच्चारण मे उसकी जीभ लडखडा जाती है या सही उच्चारण नही कर पाती। इसका सही बोध मौन विद्यार्थी पाठको द्वारा द्रुतगति से पुस्तक के व्यक्त पठन स हो सकता है। इसलिये 'उपस्थित श्रीमन' या प्रत्युत्पन्नमति जसे शब्दों के उच्चारण म उन्ह काठिन्य दिखाई देने लगता है।

पर हाडौती म सयुक्त व्यजना म 'य और 'व पर व्यजन रूप म अति प्रचलित हैं। इस अति प्रचलन से 'चार के स्थान पर शिक्षित भी च्यार' उच्चारण करते रहते हैं।

वाक्य स्तर पर भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे प्रभावित साधारण वाक्य का आरम्भ तो तनिक बल स होना है पर उसका बल क्रमश उत्तरोत्तर कम होना चला जाता है—आदि से अत तक समबलता नही पायी जाती है। इससे क्रिया का उच्चारण शेष शब्दो स निबल होता है। पर प्रश्न, उ [illegible] आदि के प्रसगो पर ऐसा नही होना है।

शुद्ध उच्चारण से वक्ता की भाषा का सौन्य निखरता है और श्रोता पर [illegible] पडता है। उच्चारण शिक्षा की ओर समुचित ध्यान शिक्षक और विद्यार्थी इस-लिय नही देते हैं कि हिन्दी हमारी मातभाषा और राष्ट्रभाषा है। पर [illegible] है। भाषा अर्जित सपत्ति है और अर्जित उच्चारण पर अधिकार [illegible] द्वारा ही होता है। अनभ्यास या यत्नसाधन म शथिल्य दिखाने पर [illegible]रण म भी दोष आ जाना स्वाभाविक है। इसलिय उच्चारण की [illegible] रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम प्रभावशाली विद्वान वक्ताओं के [illegible]रण सौष्ठय को ध्यान से सुनें और ग्रहण करें। आकाशवाणी के [illegible]रणो को भी ध्यान से सुनकर हम अपने उच्चारण को सुधार [illegible]।

हाडौती में विदेशी ध्वनियाँ

हाडौती म विदशी ध्वनिया का आगमन मुसलमानी प्रभाव या यूरोपीय प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। मुगलमानी व अग्रेजा का देश पर आधिपत्य होने के उपरान्त उनकी अरवी फारसी व अग्रेजी भाषा के शब्दो का व्यवहार भी सामान्य जनता म होन लगा। हाडौतीभाषी जनता के लिए उनकी अनेक ध्वनियाँ अपरिचित थी, जिनका मूलरूप म पचा लना उसक लिए असम्भव था। अत जो विदेशी शब्द हाडौती म प्रयुक्त होन लगे, उनकी ध्वनियो म अनक परिवतन यहाँ आकर हुए। य परिवतन उन ध्वनिया म तो हुए ही जो हाडौती भाषियो के लिए नितान्त अपरिचित थी, पर परिचित ध्वनिया म भी मुख सुख व अधसादश्य के कारण अनेक ध्वनियाँ परिवर्तित रूप म ग्रहण की गई। अपरिचित ध्वनियाँ प्राय किसी समानोच्चरित हाडौती ध्वनि म परिवर्तित होकर इस क्षेत्र म अपनाई जाने लगी।

(क) अरवी फारसी शब्दा मे ध्वनि परिवतन

(१) अरवी फारसी मे ऐसी अनेक ध्वनियाँ थी जो लिपि सकेतों की भिन्नता के साथ हाडौती से उच्चारण भिन्नता भी रखती थी पर यह भिन्नता इतनी सूक्ष्म थी कि सामान्य हाडौती जनता के कान न तो उसे समझने के लिए कुशल थे और न जीभ उसको उसी रूप म उच्चारण कर सकती थी। अत ऐसे समान ध्वनि-समूह के लिए हाडौती मे एक ध्वनि काम म आने लगी। ऐसी कुछ समान ध्वनियाँ नीचे दी जाती हैं।

अरबी फारसी के वण		मूल उच्चारण	हाडौती उच्चारण
अलीफ	(ا)	अ	अ
ऐन	(ع)	अ	
काफ	(ک)	क	
काफ	(ق)	क	क
गाफ	(گ)	ग	
ग़ैन	(غ)	गैन	ग

ज़ाल	(ز)	द (अ०) ज़ (फा०)	ज़
ज़े	(د)	ज़	
ज़ोय	(ظ)	ज (अ०) ज़ (फा०)	
ज़्वाद	(ض)	द (अ०) ज़ (फा०)	
झे	(ژ)	झ (फा०)	
जीम	(ج)	ज	
ते	(ت)	त	त
तोय	(ط)	त (अ०) त (फा०)	
से	(ث)	स (अ०), (फा०)	स
सीन	(س)	स	
स्वाद	(ص)	स (अ०) स (फा०)	
शीन	(ش)	श	
हे	(ح)	ह (अ०) ह (फा०)	ह
हे	(ه)	ह	

नीचे उपयुक्त ध्वनि-परिवतन को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे है।

अक्कल<अक्ल, अल्ला<अल्लाह कलम<कलम कतल<क़त्ल, कागद<कागज़ गरीब<ग़रीब जायको<ज़ाइक जेर<ज़हर जुलम<ज़ुल्म, ज़रूर<ज़रूर जनाब<जनाब, तरै<तरह, तसबीर<तस्वीर साफ<साफ, स्याबास<शाबाश सुक्र<शुक्र हाजर<हाज़िर, सुब<सुबह म्हैनत<मेहनत।

(२) उपयुक्त ध्वनियो म से सघर्षी ध्वनिया क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का स्थान क्रमश स्पर्शों—क ख ग ज फ ने ले लिया, यथा—

कीमत<क़ीमत खबर<ख़बर गलत<ग़लत फसाद<फ़िसाद

अरबी फारसी के ह्रस्व 'इ' कार युक्त शब्दों के इ स्वर का परिवतन हाडौती मे अनेक प्रकार स हुआ कही वह अ या ई मे परिवर्तित हो गया और कही स्वराघात के साथ आगे या पीछे जाकर सधि नियमो के अनुसार परिवर्तित हो गया यथा—

अयाम<इनाम एलम<इल्म खत्याव<ख़िताब मजीद<मस्जिद

(३) अनेक शब्दों मे स्वर भक्ति के फलस्वरूप शब्द के मध्य में स्वरागम हुआ—

उदा०—जुलम<ज़ुल्म हुकम<हुक्म, कतल<क़त्ल मुसकल<मुश्किल, फरज<फ़ज्र।

(४) स्वर लोप और स्वर विपयय के भी अनेक उदाहरण हाडौती म मिलते हैं—

उदा०—मामलो<मुआमलह स्याही<सियाही मुकम्मल<मुकम्मिल।

(५) स्वर तथा व्यजन विपयय के अनेक उदाहरण हाडोती मे मिलते हैं यथा अ याम<इनाम मतरल< मतलब मुवलको<मुश्कलह कत्थाबी< तकाबी वासर< वारिस।

(६) व्यजन लोप के भी उदाहरण मिलत हैं

उदा०—मजीद<मस्जिद मजूर<मजदूर बकाल<बक्काल।

(७) अनेक अरबी फारसी की ध्वनिया हाडोती म प्राय ज्यो की त्यों आ गई हैं वे है (ا) अ (ب) ब (پ) प (ت) त (ث) स (ج) ज (چ) च (د) द (ر) र (س) स (ک) क (گ) ग (ل) ल (م) म, (ن) न (و) व (ہ) ह (ی) य।

इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

असबाब<असवाब पेस<पश असर<असर जनाब<जनाब चाकर< चाक्र, रातब<रातिब जगर<जिगर अनसान<इसान।

(८) अरबी फारसी म मिलने वाला ह का अनेक शब्दो म कठनालीय स्पश म परिवतन हो गया और यदि अपने से पूव अ हुआ तो उसे विलम्बित म म परिवर्तित कर गया यथा—

म ल<महल स र<शहर सा ब<साहब म र<महर।

(९) कुछ शब्दा म ध्वनि परितन इस प्रकार हुआ है

(क) अघोष स्पश के स्थान पर सघोष स्पश—

उदा०—नगद<नक्द, तगदीर<तकदीर टगटो<तख्त फगत<फकत।

(ख) अनुनासिकता का आगम यह अनुनासिकता मूल भाषा मे पाये जाने वाले किसी अनुनासिक व्यजन के फल स्वरूप आई है।

उदा०—खा<खान मदरसो<मदरसा।

(ग) कही एक वण न समीपता के कारण दूसरे वण को प्रभावित किया है।

उदा०—लीलाम<नीलाम।

(घ) कुछ शब्दो म ध्वनि-परिवतन आश्चयजनक हुआ है यथा तकाजो< तकादह हुदर<हुनर।

(ख) यूरोपीय शब्दो मे ध्वनि परिवतन

अग्रेजी के राज्य स्थापन के उपरा त अग्रजी तथा उसके माध्यम से अन्य यूरोपीय भाषाओ के शब्द हाडोती म आये। अग्रजी भाषा साहित्य की दृष्टि से तो सम्पन्न भाषा है पर लिपि की दृष्टि के सम्पन्न नही कही जा सकती। यही कारण है कि उसम अनेक ऐसी ध्वनियाँ वतनी गत रूढ़ता से निकलती हैं जिनके लिए कोई एक लिपि चिह्न नहीं है। स्वरो की सख्या वणमाला म तो केवल ५ हैं

पर वर्तनिया के फलस्वरूप सभी हाडौती स्वर ध्वनियाँ प्रकट की जाती हैं। इसी प्रकार अग्रेजी व्यजना म भी सभी हाडौती व्यजन ध्वनिया को व्यक्त करने की क्षमता है। हाडौती का उच्चारण अग्रेजी म नही मिलता और न हाडौती 'ण' अनुनासिक-व्यजन ही अग्रेजी म सुनाई पडता है। अग्रेजी फ (f) ज (z) क्स (x) तथा य(y), क्व(q)ध्वनियो के लिए हाडौती म ठीक वसी ही कोई ध्वनि नहीं मिलती। अत उक्त अग्रजी ध्वनियो स बने शब्दो मे परिवतन आवश्यक हुए।

हाडौती भाषियो के पास अग्रेजी शब्द हिन्दी भाषी जनता के माध्यम से आये। अत वे सब ध्वनि परिवतन तो हाडौती म हुए ही जो हिन्दी म ऐसी ध्वनियो मे हो चुके थे पर साथ ही इनमे भी परिवतन उन शब्दो म मिलने लगे जो हाडौती भाषा की अपनी विशेषता है।

(१) अग्रेजी शब्दो म पाई जाने वाली ह्रस्व 'इ' ध्वनि प्राय अ' या 'ई म बदल गई अथवा स्वराघात के साथ शब्द म इधर उधर चली गई और उस अक्षर के स्वर के साथ मिलकर सधि के नियमो के अनुसार परिवर्तित हो गई, यथा—

अजन <एजिन अजीनेर <इजिनियर अच <इच, टैम <टाइम, सैंस <साइन्स, पमसल <पैंसिल।

(२) कुछ स्वर ध्वनिया की अग्रेजीगत ध्वनि सूक्ष्मता हाडौती मे लुप्त हो गई थी और उसके निकटवर्ती स्वर न उसका स्थान ग्रहण कर लिया। अग्रेजी की स्वर ध्वनियो म आरम्भिक परिवतन तो हिन्दी मे हुआ और तत्पश्चात जब य हाडौती मे आई तो इनम फिर परिवतन हुआ यथा—

हा० पैन <हि० पन <अ० पन चाक <हि० चाक <अ० चक फटबोल < हि० फुटबाल <अ० फुटबाल, आपस <हि० आफिस <अ० आफिस।

(३) अग्रजी शब्दो की सयुक्ताक्षरता हाडौती म आकर सरल हो गई यथा—माटसा <मास्टर साहब कपोटर <कम्पाउण्डर नसपटर <इस्पेक्टर, रगरूट <रिक्रूट।

अनेक शब्दो क सरलीकरण मे स्वरभक्ति म योग दिया, यथा—फारम < फाम बगस <बाक्स डागदर <डाक्टर।

फिर भी ऐस शब्द मिलत हैं जिनमे पूण सरलीकरण अभी नही होता है।

उदा०—कस्टरेल <कस्ट्रोदल अस्पेसल <स्पशल टरेक्टर <ट्रैक्टर अस्टयाम <स्टाम्प।

(४) हाडौती के शब्दो के आदि म प्राय सयुक्ताक्षरता नही मिलती। अत ऐसी समस्त ध्वनियाँ जो शब्द के आदि म असयुक्ताक्षर रूप धारण कर गइ। यह कई प्रकार से हुआ—

(क) आदि स्वरागम द्वारा

उदा०—अस्टयाम < स्टाम्प अस्कूल < स्कूल अस्टेसन < स्टेशन।

(ख) दो संयुक्त व्यंजनों में से कोई एक शब्द के आदि में असंयुक्त रूप में प्रयुक्त होने से—

टरक < ट्रक फरेम < फ्रेम।

(५) मध्य के स्वर तथा व्यंजनों के लोप के भी अनेक उदाहरण हाड़ौती में मिलते हैं

उदा०—गाडर < गडर गाड < गार्ड वासकट < वेस्टकोट।

(६) मध्य तथा अन्त्य व्यंजन के आगम के उदाहरण भी अनेक शब्दों में मिल जाते हैं।

उदा०—टमाटर < टोमटो

(७) अघोष ध्वनियों का सघोष ध्वनियों में तथा सघोष ध्वनियों का अघोष ध्वनियों में परिवर्तन भी अनेक शब्दों में हुआ यथा—टगस < टिकिट काग < कार्क लाट < लार्ड।

(८) जिन शब्दों में अंग्रेजी स्वरों में अनुनासिकता नहीं थी उसमें अनुनासिकता मिलती है, जो किसी अवस्था में तो अनुनासिक व्यंजन के फलस्वरूप आई है और किसी अवस्था में अकारण ही यथा—

काँजीहौंत < काइन हाउस, डागदर < डाक्टर।

(९) हाड़ौती प्रकृति के अनुसार एक ही शब्द में इकार प्रधान या उकार प्रधान वर्ग की दो ध्वनियाँ एक साथ नहीं रह सकती इसके फलस्वरूप कुछ अंग्रेजी शब्दों में स्वर परिवर्तन हुए यथा—

टगस < टिकिट, अपरेसन < आपरेशन, सार्टीफगस < सर्टिफिकेट चमनी < चिमनी।

(१०) असावधानी के फलस्वरूप और शब्दों में स्वर या व्यंजन विपर्यय भी हुआ यथा—

सार्टीटगस < सर्टिफिकेट सगनल < सिगनल।

(११) न का म तथा ल् का म परिवर्तन अनेक शब्दों में हुआ। सलीमू < सिनेमा लालटन—लन्टन नम्बर < नम्बर पमसन < पंसिल अलमारी < आलमारी।

हाडौती लोक-साहित्य

'हाडौती शब्द क्षेत्र वाचक और बोली वाचक है जिसका प्रोयग सज्ञा और विशेषण दोना रूपों मे होता है। वतमान बूदी, कोटा और झालावाड जिला के उत्तरी भाग हाडौती क्षेत्र कहलाता है। चौहानवश की एक शाखा—हाडा शाखा के क्षत्रिय गत सात सौ वर्षो तक इस क्षेत्र क शासक रहे हैं। इस हाडा' शब्द से ही हाडौती शब्द (हाडा + पुत्र > हाडा उत्त > हाडा-ऊत > हाडौत + ई) बना है। इस क्षेत्र म अनेक बोलियाँ पाई जाती है पर इसकी प्रमुख बोली हाडौती बोली है इस लेख मे प्रयुक्त हाडौती शब्द से अभिप्राय क्षेत्र विशेष का न होकर बोली विशेष का है। अत हाडौती लोक साहित्य से तात्पय हाडौती बोली की उस मौखिक अभिव्यक्ति से है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने न गढी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसम लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित रही है और लोक मानस प्रतिबिम्बित रहा है।[1]

हाडौती लोक जीवन और सस्कृति की झाँकी उसके लोक साहित्य म मिलती है। यहाँ क जीवन क अतीत वतमान क रूपो का उसम चित्रण मिलता है। इसका जटिल सरल रूप उसकी विभिन्न विधाओं के माध्यम स व्यक्त हुआ है। उसक द्वारा इस क्षत्र के सामाजिक धार्मिक स्वरूपा की रक्षा और निर्वाह हुआ है। उसके अध्ययन स यहाँ के लोक जीवन की परम्पराएँ रूढियाँ, प्रगति शील विचारधारा, खान पान, वस्त्र, आवास, आभूषण, व्यवसाय आदि के सही स्वरूप को सहज ही जाना जा सकता है। वह अपनी लघुता म भी विशाल है और सरलता म भी मानस की गहराइया तक पहुचता है। उसम यहाँ के लोक-जीवन के वविध्य की अभिव्यक्ति विविध साहित्य रूपो मे हुई है।

---

१ डॉ० कन्हैया लाल शर्मा हाडौती बोली और साहित्य, साहित्य खड, पृ० १

लोकगीत—

हाड़ौती लोक गीतों का विस्तार व्यापक है। ये विविध संस्कारों के साथ सम्बद्ध हैं और उस लोक संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं, जिसे नागरिक सभ्यता या आधुनिकता निगल जाना चाहती है। इस प्रकार वे वर्तमान में अतीत हैं और आधुनिकता में प्राचीन भारतीयता के अवशेष हैं। पुत्र जन्म के पूर्व उनका आरम्भ होता है और मृत्यु पर्यन्त वे चलते हैं। पुत्र-जन्म से पूर्व हाड़ौती में साध गीत मिलता है। ऐसे गीतों में गर्भवती स्त्री की नौ मासगत रुचि का क्रमिक विकास वर्ण्य विषय बनता है। प्रसव वेदना पति की प्रसव सम्बन्धी अनभिज्ञता और सामान्य उपचार का ऐसे गीतों में वर्णन मिलता है। जळवा और जापा' गीतों में भी लोकाचार विषयक विवरण मिलते हैं। हाड़ौती लोरियाँ छोटी छोटी पंक्तियों में बँधी हुई बाल मनोविज्ञान पर आधारित वात्सल्य की संगीतमय अभिव्यक्तियाँ हैं। पुत्र और पुत्रियाँ एक ही माता पिता की संतानें होती हैं पर पुत्री विषयक लोरियों में उसके प्रति सामाजिक अनुदार दृष्टिकोण की झलक मिलती है जो पुत्र विषयक लोरियों में नहीं है—

हनो बाई, हनो बाई रूप का डळा
घाटो चढ़ता टूट्या नळा।

ऐसी अनेक लोरियाँ तुकबन्दी से ऊंची नहीं उठ पाई हैं।

विवाह के गीतों में सगाई, उकीरा, बधावा बना, लाडी, बीरा तेल साँझी, बामण, मैंडा घोडी, सवरो अगवाणी टोडरमल कामण बदा रातीजगा गाळ आदि के गीत मिलते हैं। इन गीतों में विवाह के सामाजिक पारिवारिक महत्त्व और आदर्श निर्वाह के साथ-साथ लोकाचार निर्वाह की परम्परा के उल्लेख भी मिलते हैं। ऐसे गीतों में कल्पना की ऊँची उड़ान जो मूल भाव से बधी होती है मिलती है। तेला के गीत में वधू के सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के साथ साथ प्राकृतिक शक्तियों का उसके स्नान के समय आह्वान और उनका सेवाभाव की चमत्कारमयी कल्पना मिलती है—

न्हाय ल म्हारी लाड लडी
थाका पावल्या हेट गंगा बव छ।
भट म्हारी आछी लाडी न्हावसी जी,
भट चाद सूरज रायत सायत आव जी
× × ×
म्हारी लाडली ऊपर अद्र गाज,
म्हारी लाडली ऊपर छत्र छाज,

बीरा गीत में बहिन का भाई के प्रति प्रेम और भाई की निधनता तथा तज्जनित संकोच का चित्रण मिलता है। बना गीत नारी के उस हृदय का

परिचायक है, जो सौंदय पर लुभा जाता है और फिर उसके सतत सानिध्य की आकांक्षा रखता है—

बनाजी थाका बान्ण का चौरा में पेंचा होई र'स्या।
बनाजी थांका हाबा का टुकडया में मछी होई र'स्यां।

'रामचरितमानस म राम, सीता और लक्ष्मण को देखकर ग्राम वधूटियो ने ऐसे ही हृदय का परिचय दिया है।

दाम्पत्य जीवन के गीतो म स्वकीया भाव की प्रतिष्ठा है। परकीया भी भायली या जोडावत रूप म मिलती है पर यहाँ वह सम्मानित नही, तिरस्कृत है। इसका आधार समाज भाव की ठोस धुरी—वंश प्रवतन की कामना है—

जोडावत म्हाकी थेंई मरजाज्यो जी,
म्हाकी परणी बस बधाव।

'परणी या स्वकीया के गीतो म पारिवारिक प्रतिष्ठा के साथ साथ दाम्पत्य जीवन के स्निग्ध चित्र भरे पडे हैं। दम्पती का वियोग ऋतु मासा द्वारा चित्रित हुआ है। वियोग के कारण भी स्वाभाविक और नित्यप्रति के जीवन से उदभूत हैं। ग्रीष्म की दुपहरी मे नौकरी पर जा रहे पति से पत्नी कहती है—

खां चाल्यो र, लोभी खा चाल्यो र प्यारा खा चाल्यो र
भगभगती दफरी में खा चाल्यो र।

इस गीत म खा चाल्यो की तीन लयात्मक आवत्तिया और तन्नुगामी र' सम्बोधन के प्रयोग तथा 'भगभगती दफरी' द्वारा प्रस्तुत ध्वनि बिम्ब आदि मिलकर श्रोता के मन म गहरी याकुलता का सचरण कर देत हैं।

हाडौती के विविध त्योहारो स उसके अनेक गीत जुडे हुए हैं। मधुमास म मनाय जाने वाले मदनोत्सव के प्रतीक गणगौर त्योहार के गीता म घूमर' गीत प्रसिद्ध है। यह एक प्रकार का सामूहिक नत्य गीत है, जिसम स्त्रियाँ नाचती हुई गाती रहती हैं। यह गीत बिना नत्य के भी गाया जाता है। होली के गीतो म आनद और मस्ती के भाव मिलते हैं। हीड के गीत कृषि जीवन मे बला की प्रतिष्ठा क प्रतीक हैं और ये ग्वालो द्वारा गाये जाते हैं।

हाडौती के गीतो मे भक्ति भाव की भी प्रतिष्ठा है। भक्ति के गीत साहित्यिक भक्ति गीतो से इस दृष्टि स भिन्न हैं कि उनम तो भक्ति का विकसित और विद्वानो द्वारा स्वीकृत रूप अपनाया जाता है पर ऐसे गीतो मे भक्ति के विकास क्रम की सभी अवस्थाएँ सुनने को मिलती हैं। यहाँ भरूजी बालाजी थाकाजी तजाजी, गगा आदि स लेकर कृष्ण और राम तक की भक्ति के गीत गाये जाते हैं। ऐस गीतो म सती धाडी के गीन लोक जीवन स अधिक सम्बद्ध हैं। एक धाडी गीत म, जो अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है, देवी के सुन्दर स्वरूप

और उसकी वरदायिनी शक्ति का सुंदर वर्णन मिलता है—

पग पड ह्रैना मोटा सेऊ थारा,
थें टूटयां फल पावसी।
सगल्यां गोत्यां को वस बधाय,
माता थें टूटयां फल पावसी।

हाडोती के लोक गीतों म वात्सल्य, शृंगार और करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। हास्य, शांत और भक्ति रस भी अनेक गीतों मे पाये जाते हैं। *उपमा इनका प्रिय अलकार है। उपमानो की सीमा लोक-मानस की पहुँच तक है।* गीतों की अभिव्यक्ति म सरलता है वक्रता नहीं है। वे यहाँ के लोक मानस के दर्पण हैं।

लोकगाथा

हाडोती की लोक गाथाएँ दो श्रेणियों म रखी जा सकती हैं—प्रथम वे, जो धर्म भावना से सम्बद्ध है और द्वितीय वे जो वीर रस प्रधान हैं। तेजाजी और 'हीड प्रथम प्रकार के उदाहरण हैं और पृथ्वीराज की लडाई दूसरे प्रकार का। प्रथम प्रकार की लोक गाथाओं म भी वीररस मिलता है पर गौण रूप से। इन गाथाओं का नायकत्व ऐसे पात्रों को मिला है जो लोक जीवन को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं। तेजाजी गाथा का नायक ऐसा वीर पुरुष है जो गायों की रक्षार्थ और वचनों के निर्वाह हेतु अपने प्राणों की बलि दे देता है। इस गाथा म समाज परिवार के आदर्श भरे पडे हैं। यही कारण है कि यह पूरे भादों मास म नियमित रूप से गाई जाती है। उसमे चरित्रों की स्थूल रेखाएँ उभरी है। गाथाओं की कथा का विकास और निर्वाह कथोपकथन शैली मे हुआ है। बीच बीच म पुनरावृत्तियाँ हैं। बगडावतों की हीड दीपावली पर गाई जाती है। यह प्रारंभ म प्रेम कथा है पर उत्तरार्द्ध म वीररस प्रधान बन गई हैं। इस गाथा का विकास सहज ऐतिहासिक क्रम पर हुआ है। इस क्रम म दो नायकों की कथा मिलती हैं। पहली नियाजी और जमती की प्रेमकथा है और दूसरी देवनारायण के त्याग और सेवा भाव की कथा है। अलौकिकता से युक्त इस कथा का प्रणयन किसी कवि हृदय से हुआ है। अत उपमानो मे लौकिक प्रयोग मिलते हैं—

मूगफल्या सी भाभी थाकी आगल्यां, भूज्या चणा की डाल।
पींडीया थाकी लगलगी जाघा थाकी मदा की सी लोय—
आख्या थाकी आवळा की फाक, ज्याकी नाक सुवा की चूंच।

इस गाथा के लोक कंठहार बनने का कारण उसम व्याप्त रोमांस और भक्ति के भाव हैं।

परथी राज की लडाई' मऊ के जागीरदार पृथ्वीराज के चरित्र से सम्बंधित गाथा है। वह इस गाथा का नायक है तथा उद्दंड और धीरोद्धत है। वह अपने मामा से अकारण युद्ध करता है और उसे मार डालता है। उसके साहस और उत्साह प्रदम्य हैं। इस लोकगाथा म युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है। नायक म विद्यमान उद्धतता और क्रोध उस अपनी खीचण माँ से प्राप्त हुए हैं। भाव चित्रण सम्बंधी उक्तियो म कहीं कहीं मार्मिकता एव व्यग्य अत्यधिक मुखरित हुए हैं। बानड नेग के भय से त्रस्त पथ्वीराज के लिए उसकी खीचण माँ का व्यग्य अत्यन्त तीखा है—

हरी हरी चूड़ियाँ परथीराज पहरजे ओडजे दखणी चीर।
लाडी बरणजे बानन्-नेग की थेंइ मऊ में देगो पुगाय ॥

वणनो की सजीवता और उक्तियो की प्रभावपूर्णता इस गाथा की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

राम कल्याण या 'राम रसायण' गाथा म रामचरित की सामती दृष्टि स व्याख्या हुई है। इसम राम केवल सामत ठाकुर या राजपूत रह गये हैं, उनका अवतारी रूप लुप्त है। कथा म नवीनता न होते हुए भी उसके विस्तारो मे नवीनता है और भिन्न प्रासगिक कथाओं की कल्पना किसी कुसस्कारच्युत मस्तिष्क की उपज है जसे सीता हरण के उपरान्त राम पूछत पूछते किसी कोली जाति के व्यक्ति से उसका पता पूछ बठते हैं तो उसका उत्तर है—

म्हाकी लुगाया तो म्हाक गोड, ते थान खार गमाई नार।

इसी प्रकार लक्ष्मण का सीता के प्रति यह व्यग्य भी फूहड मस्तिष्क की उपज होने से तिरस्करणीय है—

सीता तो सरीखी दादा भाई बारज्या थें असी कतनी लाया नार।

हीरामनजी रुक्मणीजी का व्याहलो आदि कतिपय छोटी छोटी गाथाएँ हैं। गाथाओं को पुरुष चम गाता है कवल अन्तिम दो स्त्रियों द्वारा गाई जाती हैं। समस्त गाथाएँ ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रो स सम्बद्ध हैं। इनम लोक गाथाकारो न इतिहास को अपने अनुकूल ढालकर उपयोगी बना लिया है।

लोक कथा

हाड़ौती की कहानी बालकों और वृद्धों के बीच सुनने सुनाने की परम्परा से गुजरकर आज भी अपनी स्थिति बनाये हुए है। उनमें मनोविनोद कौतूहल व विस्मय के अतिरिक्त उपदेशात्मकता का भी स्थान मिला है। राजा रानी साधु-सन्यासी चार डाकू देवी देवता ठग ठगिनी आदि नायक नायिकाओं से सम्बद्ध ये कहानियाँ कथानक के आकस्मिक विकास और परिणाम को अपने म सहेजकर चलती हैं। आश्चर्यतत्व उसका मेरुदण्ड है। अलौकि

तरह उन्हें समय समय पर संभालना पड़ता है तथा उसे सुखद परिणाम की ओर अग्रसर करता है। कथानक के अतिरिक्त इनकी कथाओं का आकर्षण वक्ता की वक्तृत्व शैली में होता है। कथित विषय के अभाव में भी वक्ता का कथन कौशल उन्हें मार्मिक और आकर्षक बनाए रखता है।

विभिन्न ग्रहों या देवताओं से सम्बन्धित कथाएं स्त्री जाति में विशेष प्रिय हैं। भाईदूज गणेश, आठ सोमावती नाग पांचम आदि की कथाओं में विभिन्न देवताओं के व्रत उपासना के महत्व का प्रतिपादन मूल विषय रहता है। नायक अनेक बार विपत्ति ग्रस्त होता है और व्रत उपासना के द्वारा उसे मुक्ति मिलती है। पारिवारिक सामाजिक लोक कथाओं में समाज की विद्रूपताएं उभरती हैं। सौत सास-बहू देवरानी जिठानी भाई भाई भाई बहन पिता पुत्र के सम्बन्धों को लेकर चलने वाली इन कहानियों में कोई-न कोई ऐसा उद्देश्य रहता है जिससे परिवार-समाज का सुधार संभव हो सके। धार्मिक व्यावसायिक छल प्रपंच भी ऐसी कहानियों में मिलते हैं। बाल-कौतूहल और मनोविनोद की दृष्टि से कही जाने वाली कहानियाँ पशु-पक्षी जगत् से भी बनती है। ऐसी कहानियाँ पंचतंत्र और हितोपदेश की परम्परा में आती हैं। इन कथाओं में यह बात अवश्य ध्यान में रखी गई है कि पशु या पक्षी विशेष अपनी प्रकृति से प्रतिकूल न जा पाये। ठगों की कथाओं तथा तिलस्मी कथाओं में विस्मय और कौतूहल अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं। राजा विक्रमादित्य अनेक कहानियों के नायक बनकर अनेक पहेलियों और उलझनों को सुलझाते दिखाये गये हैं। इसी प्रकार ठगों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में प्रदर्शित चातुर्य प्रतियोगिता आश्चर्यजनक होती है।

लोक नाट्य

हाड़ौती लोक नाटक उस नाट्य-परम्परा के हैं जो साहित्यिक नाटकों के उदय से पूर्व देश में प्रचलित रही होगी। इन लोक नाटकों में उनकी चेतना उनके कथातत्त्व में न होकर अभिनय तत्त्व में विद्यमान है। ऐसे नाटकों की कथाएं या तो धर्म भावना से प्रसूत होती हैं या उनमें शृङ्गारिता और वीरता को स्थान मिलता है। ऐसे नाटकों को क्रमशः लीला और खेल में विभक्त किया जा सकता है। लीलाओं में भगवान के अवतार धारण करने की कल्पना है और खेलों में नायक राजा की स्त्री आसक्ति और युद्ध के वर्णन मिलते हैं। ऐसे कथानक वीरगाथाओं की परम्परा में आते हैं। पुराणों के आधार पर रचित लीलाएं हैं जिनमें भगवान द्वारा भक्त की परीक्षा ली जाती है और उसमें खरा उतरने पर उसको भगवान दर्शन देते हैं। रामलीला पूर्णरूपेण रामचरित मानस के आधार पर लिखी गई है। गोपीचन्द लीला में परीक्षा क्रम के उपरान्त ईश्वर दर्शन की बात नहीं मिलती। खेलों में नायिका के प्रति नायक की आसक्ति

और वे रुक्मिणी से, जो उन्हे सच्चे हृदय से प्यार (भक्ति) करती है अपना परिणय स्थापित करते हैं। इसकी कथा का आधार भागवत पुराण है। इस प्रकार 'लीला' नाटको को 'भागवत' ने प्रेरणा और आधार दिये हैं।

खेलो मे ढोला मरवण की कथा राजस्थान की प्रसिद्ध लोक कथा है जिसने अनेक साहित्य रूपो मे अपना स्थान बना लिया है। नाटक का नायक ढोला है जो किसी रेवा नाम की खलनायिका के प्रेमपाश म बध जाता है। नायिका मरवण के प्रयत्नो से उसे मुक्ति मिलती है। रज्याहीर पजाब की प्रसिद्ध प्रेम गाथा हीर राँझा पर आधारित है जिसम वर्णित प्रेम इश्क हकीकी के अन्तर्गत आता है। इसकी कथा-योजना इस प्रकार हुई है कि उसम रहस्यात्मकता आ गई है। सूफी सतो की प्रतीक पद्धति का इसमे निर्वाह हुआ है। बीरबल गुरु रूप मे आकर रज्या (साधक) को हीर (ईश्वर) की प्राप्ति का मार्ग दिखाता है और नायक अनेक विघ्न बाधाओ को पारकर उसे प्राप्त कर लेता है। फूलादे का नायक केसरी सिंह अपनी भाभी द्वारा फूलादे की रूप प्रशसा सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है और ठगिनी के मायाजाल से छूटकर अ त म उसे प्राप्त कर लेता है। 'खेंबरा' मे नायक की आबलदे के प्रति आसक्ति और तत्पश्चात युद्ध के उपरान्त उसकी प्राप्ति दिखाई गई है। यह नाटक अत्यन्त प्रचलित और प्रसिद्ध है।

कहावते

हाड़ौती कहावतो मे इस क्षेत्र के लोक जीवन के सचित अनुभव का परिचय मिलता है। वे जीवन के हर पहलू से सम्बधित है। कृषक जीवन परिवार समाज जीवन धर्म और नीति इतिहास शिक्षा ज्ञान प्राप्ति के सभी क्षेत्रो म उनका प्रसार है। शिक्षित व्यक्तियो मे विद्वानो की सूक्तियाँ ढाल और तलवार का काम करती हैं और ग्रामीणो मे भी कहावतें इसी प्रकार काम म आती है और उसके जीवन का सबल बनकर उसे सभाले रहती है।

हाड़ौती कृषि प्रधान भू भाग है। कहावतें यहाँ के प्रमुख व्यवसाय कृषि के लिए निर्देशिका का काय करती हैं। उसम वर्षा विज्ञान का अनुभव सचित है—

(१) पूषू पडवा गाळ दन बहतर टाळ।

(२) *आभा राता मे ताता।*

आभा पेळा मे' सेळा।

(३) बरस भरणी छोडो परणी।

लोक जीवन की भाग्यवादिता कृषि के कर्मक्षेत्र म भी उसका पीछा नहीं छोड़ती—

फरम हीण खेती मर
बल मर, क सूखो पड ।

सामाजिक क्षेत्र म कहावता का बडा योगदान रहा है। उन्हाने जातीय विशषताग्रा का विश्लेषण किया है सामाजिक समानता स्थापित की है और पारिवारिक एकता पर बल दिया है। 'मूग से मूग बडो कोईन कहावत म लौकिक धरातल पर व्यक्ति समानता का प्रतिपादन है और 'ग्रातमा सो पर मात्मा म समानता का प्रतिपादन ग्राध्यात्मिक ग्राधार पर हुग्रा है।

यद्यपि इन कहावता म श्रेय माग को ही व्यक्ति क लिए श्रेयस्कर बतलाया है पर प्रेय माग की झलक और उसका विश्लेषण भी इनमे मिलता है। इस प्रकार हाडौती कहावतें जीवन के उभयपक्ष को—लोक परलोक को दृष्टि पथ मे रखकर चलती हैं। उनम जो विरोध दिखाई देता है वह दृष्टि भेद जनित है—

(१) साचई ग्रांच कोईन ।
(२) करो पाप तो खावो धाप ।

कहावता के निर्माण म निमाताग्रा की दृष्टि स्थानीय घटनाग्रो और स्थानों पर भी गई हैं। इसलिए 'ग्रणता की गूण फलायथ पटकबो या 'हाडा खीची को वर हाबो ग्रादि उनके निरीक्षण क्षमता से प्रकट हैं।

पहेली

हाडौती का पहेली साहित्य ठेठ ग्राम जीवन की गहराई और विस्तार से निकला है। इसलिए उसम उसके हर पक्ष का चित्रण और वणन है और उसके मनोविकास का स्वरूप भी। जिन वस्तुग्रो को लेकर पहेलिया का निर्माण हुग्रा है व ग्रधिकाश म नित्यप्रति क व्यवहार की है—चाहे व व्यवसायगत हो या गहगत। तवे को लेकर कही गई इस पहेली म सरलता और स्पष्टता है—

बारा ग्राया पावणा, रोटी पोई एक,
जतना का जतना जीमग्या रोटी रगी एक।

इनका रचना विधान सूक्ष्म ग्राधारो पर हुग्रा है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्ता पर इनम ग्रप्रस्तुतो का विधान हुग्रा है। कही सादृश्य है तो कही विरोध। विरोध पर निर्मित एक पहेली देखिए—

बना पर्गा को डावडो तळाब न्हावा जाय,
न्हाव डूब धरण ग्रायों बठयो खूण्यां बीच।

वाल पहेलिया का रचना विधान सरल है और उनम कौतूहल की व्याप्ति है—

छोटी सी टमटी टमटम कर,
लाख रुप्या को बणज कर। (दवात)

इस प्रकार हाडौती लोक साहित्य काफी समृद्ध है। उसम जीवन जगत के विशाल अनुभव सचित है। वह भारतीय सास्कृतिक अखडता का परिचायक है और लोक जीवन की उस साधना का परिचायक है जो अपने अव्यक्त रूप म भी क्रियाशील रहती है। उसमे जीवन का उपयोगी सत्य भी प्रकट हुआ है और 'सुदरम' भी अभिव्यक्ति पा सका है। इसीलिए उसम वह शक्ति है कि जब देश की ग्रामीण सभ्यता मरणो मुख है तब भी वह अपनी चतना सजाये हुए है और अपने सकलन और सरक्षण के लिए विद्वानो को आमत्रण दे रहा है।

हाडौती काव्य मे वीररस

हाडौती का लोक काव्य उसके लोक जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब है। यहा राजस्थानी काव्य के समान ही शृ गार और वीर रसो का सुदर सयोग घटित हुआ है। हाडौती बोली को साहित्यिक भाषा बनने का सम्मान न प्राप्त होने पर भी यहाँ के लोक कवियो ने उसी मे वीररस के गीत गाये हैं। ऐसे गीत काल्पनिक अनुभूतियों पर आधत न होकर यथाथ की भूमि पर खडे हैं।

वीररस का स्थायी भाव उत्साह है जिसमे साहसपूण आनन्द की उमग पाई जाती हैं। इस युद्धवीर के अतिरिक्त दानवीर, दयावीर और धमवीर रूपो मे भी देखा जा सकता हैं। ऐसे सभी वीरो मे स्वकर्मों के प्रति ऐसी उमग दिखाई देती है जो कमपथ को आनन्दमय बनाती चलती है। हाडौती के काव्य मे स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के वीरो को स्थान प्राप्त हुआ हैं। क्योकि राजस्थान की भूमि वीरप्रसूता है अत हाडौती मे युद्धवीरों की कमी नही हैं। हाडौती काव्य मे ऐसे वीर चित्रित हैं जिनका उत्साह अदम्य था। उन्हें देखकर यह कहना पडता है कि यदि देश के अमुक युद्ध मे अमुक सेनापति के स्थान पर वे होते तो उसका परिणाम ही भिन्न निकलता।

'परथीराज का कडे का नायक पृथ्वीराज एसा ही वीर है, जिसके जीवन चरित को लेकर हाडौती बोली में किसी नाथू नामक व्यक्ति ने लोक गाथा की रचना की है। इस वीररस प्रधान काव्य का नायक पृथ्वीराज मऊ का छोटा सा जागीरदार है। 'खींचरण माँ से उत्पन्न वह युवक काळया भील खैराबाद के मीनो गुजरात के सामन्त अपने मामा—घाटी के रावजी तथा जयपुर के राजा मानसिंह से युद्ध करता है। युद्धा मे वीररस की अभिव्यक्ति होती आई है। युद्धो के वणनों मे कभी कभी कवि शत्रु पक्ष को निबल बतला देते हैं और नायक का पक्ष प्रबल होता है। ऐसी दशा मे नायक के उत्साह का सच्चा और प्रकृत रूप सामने नही आ पाता है। पृथ्वीराज के पास भील और मीनो की एक छोटी-सी सेना है और घाटी के रावजी के पास युद्ध व्यवसायी विशाल क्षत्रिय-सेना है, जिससे उसे मोर्चा लेना पडता है। इस पर भी एक सच्चे वीर की भाँति

पृथ्वीराज रावजी को प्रथम प्रहार करने का अवसर देकर पुनः प्रहार करने को कहता है—

म्हूँ तो कऊँ छूँ मामाजी कर वालो र ज्यागी मनड़ मांइ।
लय पमोडू रहता सेल की मामी न कर दूं रांड।

हे मामा जी, मैं आपसे कहता हूँ कि आप पुनः प्रहार कर लीजिए अन्यथा आपके मन में ही रह जायगी कि मैं प्रहार नहीं कर सका। मैं तो अपनी बारी में अपने तीक्ष्ण भाले का ऐसा विकट प्रहार करूँगा कि अपनी मामी को विधवा कर दूंगा।

यदि शास्त्रीय दृष्टि से इस कथन का विश्लेषण करें तो रावजी आलम्बन है। उनका पराक्रम, प्रहार आदि उद्दीपन है। पृथ्वीराज की गर्वोक्तियाँ अनुभाव है तथा 'गर्व', धृति आदि संचारी हैं। इस प्रकार उत्साह स्थायी ध्वनित है। यहाँ वीररस की निष्पत्ति की पूर्ण सामग्री विद्यमान है।

युद्ध का सजीव वर्णन जितना नाथू कर पाया है उतना बहुत कम देखने में आता है। चन्दा और ढोला के बीच में युद्ध हो रहा है। दोनों बड़े बलवान हैं। दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हो रहा है—

दोनी दळां में बाजा हद बाज रया दोनी बुवार खेत।
दळ का मांझी दोनी मल्हावरया यामें कुण पाडू कुण कंत।
घर घर तो तोपां धाधार कर ऊटों प बव जम्पूर।
खांडो चव छ ढोला परयानको चन्दा का दळ क मांइ।
आज धरा प चमक बीजळा काळा बादळ मांइ।
खांडो चमके छ चन्दा का हाथ को पीया का दळ मांइ।
तरवारयां की तीळ उड, बगतर कट कट जाय।
सूरा कट छ जी रण खेत में, बाको मास कागला खाय।
खचक खचक तो भाला बोल रया, छपक छपक तरवार।
सूरा कट छ रण का आइन यांको अन्त न आव पार।

'दोनों सेनाओं में बाजे बज रहे हैं और दोनों ओर भयंकर मारकाट मच रही है। दोनों दलों में भयंकर युद्ध हो रहा है। कहा नहीं जा सकता कि इनमें कौन तो पांडव है तथा कौन कौरव है? तोपें धर्राट करती चल रही हैं और ऊंटों की पीठ पर से छोटी तोपें दागी जा रही हैं। प्रधान सेनापति ढोला की तलवार चन्दा की सेना के मध्य में प्रलय ढाती जा रही हैं। जैसे पृथ्वी पर हो काले बादलों के बीच में बिजली चमक रही हो, ऐसे चन्दा के हाथ की तलवार भी पृथ्वीराज की सेना में ऐसे चमक रही है। तलवारें खट खट चलती जा रही हैं और कवच कटते जा रहे हैं। अनेक वीर योद्धा गिर रहे हैं जिनका मांस कौए खाते जा रहे हैं। भालों के प्रहार से खचक खचक की ध्वनि आ रही है और

तलवारा क प्रहार से छपक छपक् की ध्वनि भ्रा रही। इतने भ्रधिक शूरवीर मर रहे हैं कि जिनकी कोई सीमा नही है।

हाडौती के एक भ्रय काव्य मे वीररस की सुदर निष्पत्ति हुई है। 'तजाजी' का प्रधान रस वीर ही है। नायक की वीरता प्रथम के समान सकुचित उद्देश्य से प्रेरित नही है पर दुख निवारण ही इनको प्ररित करता है। तजाजी भ्रपनी ससुराल जा रहे है। उन्ह माग म शकुन भ्रच्छे नही होते। गाँव स निकलत ही तो काले घड़े लिए पनिहारी मिल जाती है, कुछ भ्रागे बढने पर काल वर्णों स हल जोतता किसान मिल जाता है भ्रौर भ्राग बायी भ्रोर कोचर मिल जाती है। पर एक सच्चे वीर की भाँति व उन भ्रपशकुनो की चिता नही करत भ्रौर उन्हें शक्ति के बल पर भ्रनुकूल बनाते चलते है। भ्रत तेजा जी कहते हैं—

बायाँ सू जीवाँ भ्रा जाव न री कोचर राणी,
न तो दूगू मळका की, बखेरू थारा पाँखड़ा।

हे कोचर रानी वायें से दायें भ्रा जा, भ्रयथा माले से तरे पख बिखर दूगा।'

सच्चा वीर प्रकृति की बाधाभ्रो का भ्रपने भ्रदम्य उत्साह क सामने कुछ नही गिनता भ्रपितु उनसे उसका उत्साह भ्रौर भ्रधिक बढ जाता है। उसकी [illegible] कठिन स कठिन परिस्थितियो म भी उसका साथ नही छोडती। तजा जी [illegible] जा रहे हैं कि माग म बनास नदी पड गई। वर्षा का समय था, नदी [illegible] उमड रहा था भ्रौर उन्हें नाव भी न मिल सकी। व भ्रपनी घोडी का नदी [illegible] देते हैं क्योकि ऐसे वीर भ्रागे बढकर पीछे हटना नही जानत। [illegible] परिणाम चाहे जो हो पर कुल की प्रतिष्ठा नष्ट नही होनी चाहिए।

भ्रपनी ससुराल जात हुए तेजाजी एक सप द्वारा स्वय का [illegible] वचन दे भ्राये थ, पर माना गूजरी के काले बछडे को मीणों म [illegible] उनका शरीर सवा मन लोह से भर गया भ्रौर माना गूजरी [illegible] व्यवस्था करान का निवेदन करने लगी तो उन्ह सप क [illegible] हो भ्रायी—

लख्या लेख गोडा भ्रागया छ री गूजर की माना।
बाचा चूकगा काळा की भूरी [illegible],

हे गूजर की माना, लिखे हुए लेख (मृत्यु) निकट [illegible], [illegible] मैं समय पर सप के पास नही पहुचा तो भ्रपने वचना को [illegible]।

वीररस की सुदर निष्पत्ति रामलीला म भी [illegible] है, जिसमें राम-रावण के युद्ध म राम का भ्रदम्य उत्साह दशनीय है। [illegible] है, हे दुष्ट मैं तेरा नाम खो दूगा भ्रौर तुझे देवी क चढा दूगा। [illegible] था, मुझे वास्त

विकता का बोध हो जायगा। तो रामउत्तर-स्वरूप कहते हैं—

धारूँ धनस कुबाण हाथ में लेलूँ थारा प्राण।
सूरज कुल को दुख दियो बहोत।
छळ कर लाया जनक नन्दनी मनमें आव जोस।

मैं धनुष बाण हाथ म ग्रहण करके तरे प्राण ल लूगा। तूने सूय कुल को बहुत दु ख दिया है। तू जनकसुता का हरण कर लाया। मेरे मन म जोश उमड रहा है।

यहाँ रावण आलम्बन है। रावण का कथन तथा उसका पराक्रम उद्दीपन है। राम का धनुष-बाण धारण करना उनकी गर्वोक्तियाँ अनुभाव हैं और 'स्मृति, 'गव' तथा 'धृति आदि सचारी हैं। इस प्रकार उत्साह स्थायी ध्वनित होकर वीररस की निष्पत्ति करता है।

वीररस प्रधान ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी ग्र थ हैं जिनम प्रधान रस शृ गाररस है और वीर रस गौण है। खेमरा, रज्या हीर 'रुक्मणी मगल आदि ऐसी लोक-नाटय रचनाए हैं। खेमरा म बाला के ललकारने पर खेमरे का उत्साह अधिक बढ़ जाता है। वह भी इस प्रकार गवपूण शब्द कहता है—

सीस ऊडादू हाथ सू सर काइ साम्हू आव।
सूरो होतो लड सामन काईं पीठ बताव।
असी धमोडू सेल की र थू पड यो पड्यो बरळाव।
अब सरोई थार ऊपर, लोथ गडकडा खाव।

मैं तेरा सिर काट डालूगा। तू सामने क्यो नही आता है यदि तू शूरवीर है तो सामने लड पीठ क्यो दिखलाता है? मैं तुझ पर भाले का ऐसा विकट प्रहार करू गा कि पडा पडा चिल्लाया करेगा और जब तेरे ऊपर मेरी तलवार चल जायेगी तो तरे शव को कुत्त खायेंगे।

राजस्थान की वीरता म स्त्रियो का विशष हाथ रहा है। एक ओर तो वे अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए जौहरव्रत को अपनाकर पुरुषो के घर सम्बधी मोह और चिन्ता को हटाती रही हैं तथा दूसरी ओर जब कभी पुरुषो ने तनिक भी कायरता दिखलाई है तो उनकी वीरतापूण व्यग्योक्तियो ने पुरुषो मे ऐसा उत्साह फूका है कि वे अपना वास्तविक सिंह रूप पहिचान सके हैं। पृथ्वीराज गुजरात म छापा मारकर लूट का माल लेकर मऊ आ रहा है। माग म बानडबेग मिल जाता है और पृथ्वीराज का माग रुद्ध कर देता है। उसे मऊ म लौटने नही देता। पृथ्वीराज परिस्थिति को अवगत कराते हुए अपनी माँ को पत्र लिखता है, पर माँ का उत्तर तो दूसरे ही प्रकार का होता है—

उलटा ई कागद लखण्या फर लखजे जोमे लखजे ज्वाब।
बनड दीज थारा पूठ की, थई मऊ मैं देगो पुगाय।

हाथी तो दीजे थारा चढण को रुप्या सू नारेळ ।
बनड तो दीजे थारा पूठ की, जीजा जी ख बतळाय।
हरी हरी चूड़यां तो परथीराज फरजे, श्रोडजे दखणी चीर।
लाडी बणजे बानड बेग की थई मऊ म देगो पुगाय ।

हे लिपिक, तू इस प्रकार उत्तर लिख दे कि यदि बानडबेग तुझे मऊ नही आने देता है तो तू अपनी छोटी बहिन का विवाह उससे कर दे जिससे वह स्वय तुझे सुरक्षित मऊ पहुँचा देगा। तू अपने चढने का हाथी तथा रुपया नारियल भेंट करके अपनी छोटी बहिन का विवाह उससे कर दे तथा उसे 'जीजा जी कह कर सम्बोधन कर, या फिर तू हरी हरी चूडियाँ धारण कर ले तथा दक्षिणी साडी पहिन ले और इस प्रकार सुसज्जित होकर बानडबेग की वधू बन जा तो वह तुझे मऊ मे पहुचा देगा।'

हाडौती का काव्य न केवल युद्धवीरो के प्रसगा से भरा पडा है, उसमे दान वीरता क भी सुन्दर प्रसग आए हैं। 'मोरधज लीला' का प्रधान रस (दान) वीर ही है। दानवीरता म त्याग की उमग परिस्थिति की विकटता के साथ बढती जाती है और आश्रय का साहसपूर्ण आनन्द प्रकट होता जाता है। ऐसी वीरता का श्रेष्ठ उदाहरण अपनी प्रियतम वस्तु के उत्सग पर प्रस्तुत होता है। धन दौलत और राजपाट के त्याग के उदाहरण तो समाज मे अनेक मिल जाते है पर अपने पुत्र को उमग के साथ साधु वेशधारी कृष्ण और अर्जुन के सिंह को आरी से चीरकर खिलाने जैसी वीरता हाडौती नाटक 'मोरधज लीला' मे ही चित्रित हुई है वह अपना सानी नहीं रखती। पुत्र वत्सलता जितनी स्त्रियो मे मिलती है उतनी पुरुषा म नही। अत जब रानी अपने पति मोरधज से यह कहती है—

रतन कवार न चीर नीरदा, नाई करा बच्यार।
सायब या सत ऊपर सजो सबका सिरजन हार।

(अपने पुत्र रत्नकुमार को चीरकर सिंह को अविचलित भाव से डाल दें क्योंकि सत्य के ऊपर ही परमात्मा विद्यमान है।) तब दानवीरता का ऐसा सुन्दर उदाहरण देखने को मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। मोरधज की दानवीरता मे उसकी पत्नी का सहयोग मणिकाचन का सयोग है।

हाडौती म वीररस के अन्य प्रकार भी मिल जायेंगे। लोक कवियो ने उत्साह की अत्यन्त सरलता स व सफलता से हाडौती काव्य म व्यजना की है। यह भिन्न बात है कि परथीराज का कडा म नायक खलतायुक्त है। वह खलनायक सा लगता है। अत रस निष्पत्ति खडित है क्योंकि आलम्बन औचित्यपूर्ण नहीं है। पर हाडौती क लोक-कवि न जो देखा या अनुभव किया उसे पूरी सचाई से व्यक्त कर दिया है। इसलिए इसके अनगढ साहित्य म कलाकारिता की उत्कृष्टता नहीं मिलेगी, पर कथ्य की सचाई से वह विरहित नहीं है।

हाडौती के विरह-गीत

1

लोकगीतो की परम्परा एक युग से चली आ रही है। जब साहित्यिक गीत न थे तब भी वे लोक जीवन म समाय हुए थे। काल के प्रवाह के साथ सतरण करते हुए ये गीत लोक जीवन के साथ इतने चिपके बठे हैं कि हम यह भी नही खोज सकते कि जीवन का कौन सा पहलू इनसे अछूना है। साहित्यिक गीतो ने भले हा हमारे जीवन के कुछ रूपा को देखा हा पर लोकगीत तो हमारी प्रत्यक भावना के साथ अपना सम्ब घ स्थापित किय हुए हैं।

हाडौती प्रदेश के लोकजीवन का जितना विस्तार है उतना ही विस्तार इन लोकगीतो के विषयो का भी है। वे उसके प्रत्येक कोने को झाकते प्रतीत होते हैं। जहाँ तक पुरुष भावो का सम्बन्ध है स्त्रियो ने उन्ह पुरुषो के लिए छोड दिया है। स्त्रियो ने तो कोमल भावा के क्षत्र म ही अपने मधुर कण्ठ से गुजन किया है। क्या शृ गार, क्या करुण क्या हास्य—सभी क्षत्रा म वे झाँक आई है। शृ गार के सयोग पक्ष म तो उन्होने उतनी तत्परता नही दिखलाई, पर विरह गीता ने उनके मानस म अनेक तरगे उठाई हैं। हाडौती प्रदेश की स्त्रियो का प्रेम लोक म प्रतिष्ठित है—

"गोखडला के बीच काइ जी खड़ा छो
मोती हार पोवा छा।'
मोती हार पोवता गोरा राईवर ने देख्या
'लडवण आओ न उरा सा।'
'म्हू तो कस्या आऊ जी म्हारा राइवर,
म्हारा बावाजो दादाजी ऊवा छ।'

इस गीत म कोई नायिका अपनी सखी को वे बातें बता रही है जो पति पत्नी म परस्पर हुई थी। पति ने पूछा—प्रिय, झरोखे पर खडी तुम क्या कर रही हो तो पत्नी ने उत्तर दिया—मोती हार गूथ रही हूं। और पति ने देखा कि वह मोती हार बना रहा है। उसने फिर कहा—हे प्रयसी तनिक निकट तो आओ। प्रत्युत्तर मे पत्नी न कहा कि प्रियतम, मैं कस आऊ, क्योंकि मेरे दादा

पिना आदि खडे हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर मे गीत बनता है।

इन लोक गीतो मे स्वकीया नायिका के विरह के जितने गीत हैं परकीया नायिका के विरहगीत अपेक्षाकृत कम हैं। उनका दाम्पत्य जीवन इतना अनुभूति पूर्ण और पवित्र रहा है कि उसके सयोग वियोग स्वत ही गीत के विषय बन गये हैं। साहित्यिक गीतो मे पुरुष कवियो ने परकीया नायिका के विरह के अतिरजनापूर्ण चित्रों की सृष्टि की है पर हाडौती के लोकगीतो मे, जो स्त्रियों की स्वानुभूति के गीत हैं स्वकीया नायिका के विरह के सुन्दर चित्र भरे पडे हैं। उनकी अनुभूति उधार ली हुई नही है।

लोक-जीवन मे विरह के अवसर नित्य प्रति आते रहते हैं। फाल्गुन मास की बसत ऋतु आई हुई है चारो ओर होली खेली जा रही है और नायिका के पति कोसो दूर किसी कार्यवश चले गये हैं तब उसका हृदय तडपकर इस प्रकार फूट पडता है—

> रुत फागण की आई,
> होली मच झडाका सू।
> वे गया राजन वे गया जी,
> वे गया कोस पचास।
> सर बदनामी ले गया रे,
> खदीयन बैठ्या पास।

होली के अवसर पर पचास कोस चले जाने वाले पति के लिए पत्नी का यह कथन कि जाते जाते वे यह अपकीर्ति ले गये कि वे मेरे पास कभी नही बैठे' कथन शैली के चमत्कार के साथ ही नायिका के विरह की कितनी मार्मिक व्यजना करता है। ऐसी ही मायके मे रहने वाली स्त्री के लिए बसत ऋतु अत्यन्त कठिन हो जाती है—

> दाडयू सूख डागल र
> घर सूख कचनार।
> गोरी सूख बाप क र,
> ऊ पूरस की नार।

'जिस प्रकार छत पर अनार सूख रहे हैं तथा घर पर कचनार के पुष्प सूख रहे हैं' उसी प्रकार ऐसे पति की पत्नी पति के अभाव मे अपने पिता के यहाँ सूखती चली जा रही है। उसे तो वहाँ खाना पीना भी ठीक ही मिलता है। उसके यहाँ श्रेष्ठ भोजन चावल मूँगो की बनी खिचडी जो घी पूरित है, मिलती है तथा और भी अनेक सुख उसे प्राप्त हैं किन्तु पति के बिना उसमे वहाँ रहा नही जाता—

चावल मूगां की खीचडी र,
घी बना खायो न जाय।
सब सुख म्हारा बाप क र,
पी बना रयो ही न जाय।

बस त मे तो उसके पति नही आये यद्यपि वह उनका स्वागत करने के लिये प्रस्तुत थी और उधर गीष्म ऋतु आ गई है। अवधि की दीघता के साथ उसकी वेदना बढ गई है। अतएव वह धूप से प्रार्थना करती है कि तू अधिक मत तपना अन्यथा वे मेरे कोमलाग पति नही आ सकेंगे—

तावडा मदरो सो पडजे र।
छैल भवर जा को जीव नरम छ,
करणी तो करजे।
सदा कसूमल फरती, सदा रजानी जीव
गणगोरयाँ आया नहीं, घणा हठीला पीव।

हे आतप! उष्णता मत ग्रहण करना क्योकि मेर सुन्दर प्रियतम कोमल हैं, बस तू इतना सा कृपापूर्ण काय करना। गणगौर पर भी मैंने उनके स्वागत के लिये कुसुमी रग के वस्त्र धारण किये और सदव अपने हृदय को उनके आगमन की आशा से तप्त किया पर वे हठीले आये नही।

इस गीत म स्मृति के द्वारा गहन व्यथा की अभिव्यक्ति की गइ है। वह अपने बिछुड प्रियतम से मिलने क लिय कितनी व्याकुल है?

अन्य ऋतुएँ तो विरहिणी किसी भी प्रकार बिता भी लेता है पर वर्षा उसके लिए अति कठिन हो जाती है। वर्षा ऋतु है पपीहा बोल रहा है और नायिका विरह से व्याकुल होकर अपनी एका त स्थिति से चीख उठती है—

'भवर बागां म आज्यो जी,
अजी मू तो कलियाँ बीणू छू अकेली।
पपीयो बोल्यो जी।'
'जोडावत म्हारो कस कर आवाँ जी,
म्हारा घर मे बद छ लडाई।'
'भवर थान्ने परणी मरज्यो जी
जी लागी लगन जण तोडी।'
जोडावन म्हाको थेई मरजाज्यो जी,
म्हांको परणी बस बधाव।'

यह गीत परकीया नायिका क साहचय स सम्बन्धित है जिसम बाद म स्वकीया भाव की प्रतिष्ठा देखी जाती है। वर्षा ऋतु म अपनी निरीह अवस्था की नायिका द्वारा जसी मार्मिक अभिव्यक्ति इस गीत म है एसी नि छल अभि

व्यक्ति कम ही स्थाना पर खोजने पर मिलती है। परकीया नायिका वर्षा के उद्दीपनकारी वातावरण मे उपवन मे कलियाँ चुनने के लिये चली गई। उसे पहले से ही प्रियतम की याद सता रही थी कि इसी बीच पपीहे ने 'पी पी' की रट लगा दी। तब वह अपने आपको इस असहाय अवस्था म न सँभाल सकी और उसका हृदय फट पडा—

'हे प्रियतम उपवन म आओ। जरा देखो तो, मैं यहाँ अकेली कलियाँ चुन रही हूँ और दूसरी ओर पपीहा ने 'पी पी' की रट लगाई है। इस पर उस प्रियतम से निष्ठुर ही उत्तर मिलता है, हे प्रियतमा, मैं किस प्रकार आऊ, क्योंकि तुम्हारे पास आने से पत्नी से झगडा बढता है। तब उत्तर म नायिका का व्याकुल हृदय इस प्रकार बरस पडा प्रियतम तुम्हारी पत्नी मर जाय तो अच्छा।' परन्तु इसी प्रकार का निष्ठुर उत्तर उसको नायक स फिर मिलता है, 'प्रियतमा तू ही मर जाना, मेरी विवाहिता पत्नी तो मेरा वश बढायगी।

यह उत्तर प्रत्युत्तर का क्रम गीत म आग भी चलता रहता है।

वर्षा के पश्चात आने वाली शरद ऋतु की लम्बी रातें पत्नी के जीवन को दुवह बना देती हैं। वह तो परमात्मा से तब भी प्राथना करती है कि रात इतनी लम्बी हो जाये कि प्रात काल हो ही नहा—

सज्जन सबेरे जायेंगे, नना मरेंगे रोई,
विधना ऐसी रात कर, भोर कद न होई।

इस दोहे के समान ही हाडौती म भी तनिक हेरफेर के साथ गीत प्रचलित हैं। विभिन्न ऋतु जनित इस वेदना का सम्बध विभिन्न मासा स भी जुडा हुआ है। आषाढ माम म बादलो को बरसते हुए देखकर दूर जाते हुए प्रिय को नायिका इस प्रकार मना करती है—

सखी असाड री असाड महीनों गरज।
यों सुदर स्याम न बरज।
थें मत जाओ जी स्याम,
या बिना जीवडो तरस।
छमाछम बादल बरस।

हे सखी आषाढ मास आ गया है। यह मास गजना करके सुन्दर स्याम को जाने से रोक रहा है। हे स्याम आप मत जाइये। आपके बिना मेरा हृदय व्याकुल होता है और इधर बादल मूसलाधार वष्टि कर रहे हैं।

'अभिलाषा' का चित्र इस दोहे म सुदर पाया जाता है—

नत उठ सूरज उगतो, नत चदा धर जाय।
ऊ सूरज कद ऊगसी जे बिछड या कत मलाय।

नित्य प्रति सूर्य उदित होता है और चन्द्रमा भी अस्त हो जाता है किन्तु

यह सूय कब उदित होगा जो मुझे अपने बिछुडे पति से मिला दगा।'

हाडौती के विरह गीतों म अतिरजना कम है। वे लोकजीवन की विरह दशाओ के सच्चे प्रतिबिम्ब हैं। अनुभूति की तीव्रता स्त्रियो के अपने मुख स व्यक्त होकर अत्यन्त ममस्पर्शी बनी हुई है। विरह का आधार कल्पना प्रसून न होकर वास्तविक जीवन है।

हाडौती लोक-गीतो मे प्रकृति

हाडौती क्षेत्र प्रकृति की सुरम्य क्रीडा स्थली है। नदी घाटिया से परिवष्टित यह प्रदेश मध्य भाग म शस्य श्यामल धरित्री की मनोरम छटा से युक्त है, जिसम सिन्धु (कालीसिंध), पावती (निर्विन्ध्या) तथा चम्बल (चमण्वती) नदिया बहती हैं। चमण्वती के सौदय पर मुग्ध होकर तो कालिदास का हृदय भी कह उठा था—

> त्वय्यादातु जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
> तस्या सिन्धो पृथुमपि तनु दूरभावात प्रवाहम।
> प्रेक्षिष्यन्ते गगन गतयो नूनमावज्य दष्टी—
> रेक भुक्ता गुणमिव भुव स्थूल मध्येन्द्र नीलम।[1]

परन्तु यह देखकर आश्चय होता है कि हाडौती के लोकगीतो मे मनोरम प्रकृति के प्रति स्वतन्त्र अनुराग प्रतीत नहीं होता। सभवत सभी भाषाओ के लोकगीतो म ऐसा मिलता हो। कारण यह हो सकता हो कि लोक गीतकारो को अपने आसपास के मानवो मे ही काव्य के इतने विषय मिल गए कि उनका ध्यान प्रकृति की मनोरमता की ओर गया ही नहीं, यदि कभी गया भी है तो मानव सापेक्ष्य से सामग्री चयन करके वहाँ से लौट आया है।

इसलिए लोकगीतो मे मानव प्रधान है और प्रकृति गौण। लोकगीतो मे उसको मानव सापेक्ष्य मे स्थान मिला है। ऐसे प्रकृति-वणनो मे प्रकृति को खुली आँखों से देखकर उसमें स केवल व व्यापार चुने गय हैं जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक और महत्त्वपूण है। जहा ऋतु वणन म केवल ऋतु विशेष का नामोल्लेख करने से अपना उद्देश्य पूरा हो गया वहाँ लोक गीतकार ने किसी खण्ड या पूण व्यापार को चुनने की भी आवश्यकता नहीं समझी। इधर ऋतु आई और उधर ग्रामीण नायक की कोटा की नौकरी भी आ गई। अत वह कह उठी—

---

1 कालिदास मेघदूत पूवमेघ ४६

शरद रत स्याळा की आई।

मू कांई करूँ म्हारी जान, नोकरी कोटा की आई ॥

हाडौती के गीतो म तीन ही ऋतुएँ प्राय मिलती हैं—शरद, ग्रीष्म और वर्षा। शिशिर, हेमत व बस त तो विद्वानो द्वारा शय ऋतुए हैं, लोक स्वीकृति वे नहीं प्राप्त कर सकी, पर लोक अन्तमन म बस त ऋतु की चतना अवश्य है—चाहे उसका नामोल्लेख लोकगीता मे नही हुआ हो। इसीलिए तो एक नायिका कह उठती है—

रत फागण की आई, होळी मच भडाका सू।

यह फाल्गुन की ऋतु वसन्त ही है जिसे बेचारी ग्रामीण नायिका नही जानती।,

वर्षा ऋतु के वणन हाडोती मे सबस अधिक मिलते हैं। वषा ऋतु प्रम की सयोग और वियोग की अवस्थाओ म उनकी तीव्रता बढाती है। वर्षा ऋतु आई है और उसने नायिका का लहरया भिगो दिया है। उसके दनिक सामा य जीवन म एक नई बात उत्पन्न हो गई है। दम्पती म से एक को प्रम प्रदर्शित करने और दूसरे को प्रेम प्राप्त करन का अवसर प्राप्त हो गया है—

भवर थाको बादलो न म्हाको ल रयो भजयो जो राज।

ल'रयो तो सूख सामी साळ में लयर लयर जिव जाय।

गोरी चता जण करो जो ल'रयो फर मगा दा जी राज।

ज्येष्ठ आषाढ मास चले गए हैं और वर्षा के सावन व भादा मास लग गय हैं। इसस सयोग का आनन्द भी द्विगुणित हो गया है—

लाग्या सावण भादवा उतरया जेठ असाड।

लूगा लपटी बेलडी ज्यू लपटया भरतार।

वियोग-वणना म बारह मासा क वणन साहित्य-परम्परा म प्राप्त होत हैं। जायसी ने नागमती का विरह बारह मासा म दिखाया है, जो बडा मार्मिक और हृदयस्पर्शी है। हाडौती गीता म बारहमासा क रूप म जो वणन मिलत हैं उनम पूरे बारह मासो का वणन कम म मिलता है। अधिकाश म तो छह मास तक के वणन ही प्राय मिलत हैं। इन मासो म प्रकृति क जो-जो उद्दीपनकारी रूप सामने आत हैं उनम स एक दो प्रमुख व्यापार चुनकर गीता म रख दिय जात हैं—

सखी असाड री असाड महनों गरज, यो सुदर स्याम न बरज।

तें मत जावो जी स्याम, था बना जीवडो तरसा।

घमाघम बादळ बरस।

तू आजा र घतर चोमासा नद धानू र चौपर फांसा।

× × ×

सखी सावण री सावण मईनो ओल्हँ, कोयल की राग भन तोड ।
तें मत जावो जी स्याम, या बना जीवडो तरस ।

× × ×

सखी भादवोरी भादवो मईनो नदियाँ ग' री, या सूरत स्याम न फेरी ।
तें मत जावो जी स्याम या बना जीवडो तरस ।

पति पास नही है अत प्रत्येक मास पत्नी के लिए दु खद बन जाता है—चाहे वह चत्र हो अथवा वशाख या अ य कोई मास । नीचे के गीतो म आनुप्रासिक छदा के साथ प्रत्यक मासगत प्रकृति के व्यापार के साथ विरह का वणन किया गया है—

जेठ जवानी छा रही सजी, अब बदनामी आसी जी
पक रया दाड यू दाख टपक रस भरतो ई आसी जी ।

× ×

असाड मास बरखा रत आई बादल चढ़ चढ आसी जी,
गरड बीजली का घोर, गरड जीवडा ई जासी जी ।

हाडौती लोक गीतो मे प्रकृति क्रूर एव भयकर भी है । प्रकृति का ऐसा रूप केवल ग्रीष्म के वणनो म मिलता है । अपने प्रियतम को लू न लग जाये अत नायिका उसे रोकती है कि ह धन के लोभी तू इस भीषण दुपहरी मे बाहर मत जा—

खां चाल्यो र लोभी खां चाल्यो र प्यारा खां चाल्यो र ।
भगभगती दफरी मे एक खां चाल्यो र ।

और एक लोक गीत की नायिका ग्रीष्म ऋतु की धूप से प्राथना करती है कि तू जरा कम तीव्र पडना क्याकि मेरे रगीले प्रियतम तनिक कोमल हैं—

तावडा म दरो सो पड जे र, तावडा मदरो सो पडजे ।
छैल भँवर जी को जीव नरम छ, करणी तो करजे ।

पवित्र दाम्पत्य प्रम मे पारस्परिक सुख दु ख का कितना ध्यान रखा जाता है, यह इस गीत स स्पष्ट हो जाता है ।

शृङ्गारिक भावना से भि न प्रकृति के स्वाभाविक सौ दय को देखकर नर नारी के हृदय म उमग व क्रीडा का भाव सचरित होता है । इसीलिए तो वर्षा हुई और नर नारी झूलने निकल जात हैं । इसी आन दमयी प्रकृति के विशाल प्रागण म एक बालिका झूले पर बठी किसी अज्ञात आन द का अनुभव करती जा रही है । गीत उधार लिया हुआ है पर हाडौती लोक जिह्वा पर आरूढ है—

न ही न ही बुंदिया रे सावण का मेरा झूलना ।
एक झूला डाला मैंने, बाबुल के राज मे
सग सहेली रे सावन का मेरा झूलना ।

शरद रत स्याळा की आई।
मूकांइ करूँ म्हारी जान मोकरी कोटा की आई ॥

हाड़ौती के गीतों में तीन ही ऋतुएँ प्रायः मिलती हैं—शरद, ग्रीष्म और वर्षा। शिशिर, हेमंत व बसंत तो विद्वानों द्वारा शेष ऋतुएं हैं, लोक स्वीकृति वे नहीं प्राप्त कर सकीं पर लोक मानस में बसंत ऋतु की चेतना अवश्य है—चाहे उसका नामोल्लेख लोकगीतों में नहीं हुआ हो। इसीलिए तो एक नायिका कह उठती है—

रत फागण की आई, होळी मच भड़ाका सूं।

यह फाल्गुन की ऋतु बसन्त ही है जिसे बेचारी ग्रामीण नायिका नहीं जानती।

वर्षा ऋतु के वर्णन हाड़ौती में सबसे अधिक मिलते हैं। वर्षा ऋतु प्रेम की संयोग और वियोग की अवस्थाओं में उनकी तीव्रता बढ़ाती है। वर्षा ऋतु आई है और उसने नायिका का सहृदय भिगो दिया है। उसके दैनिक सामान्य जीवन में एक नई बात उत्पन्न हो गई है। दम्पती में से एक को प्रेम प्रदर्शित करने और दूसरे को प्रेम प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया है—

भवर थांको बादली न म्हांको ल'रयो भजवो जी राज।
ल'रयो तो सूख सामी साळ में लयर लयर जिव जाय।
गोरी चंता जण करो जो ल'रयो फर मंगा दां जी राज।

ज्येष्ठ आषाढ़ मास चले गए हैं और वर्षा के सावन व भादों मास लग गये हैं। इससे संयोग का आनन्द भी द्विगुणित हो गया है—

लाग्या सावण भादवा उतरया जेठ असाड।
सूगा लपटी बेलड़ी ज्यूं लपट्या भरतार।

वियोग-वर्णनों में बारह मासों के वर्णन साहित्य परम्परा में प्राप्त होते हैं। जायसी ने नागमती का विरह बारह मासा में दिखाया है, जो बड़ा मार्मिक और हृदयस्पर्शी है। हाड़ौती गीतों में बारहमासों के रूप में जो वर्णन मिलते हैं उनमें पूरे बारह मासों का वर्णन कम ही मिलता है। अधिकांश में तो छह मास तक के वर्णन ही प्रायः मिलते हैं। इन मासों में प्रकृति के जो जो उद्दीपनकारी रूप सामने आते हैं उनमें से एक दो प्रमुख व्यापार चुनकर गीतों में रख दिये जाते हैं—

सखी असाड री असाड मईनों गरज, ओ सुंदर स्याम न बरज।
तें मत जावो जी स्याम, था बना जीवड़ो तरस।
घमाघम बादळ बरस।
तू आजा र चतर चोमासा, जद खेलू र चौपड़ पांसा।

× × ×

सखी सावण री सावण मईनो जोरूँ, कोयल की राग भन तोड्।
तें मत जावो जी स्याम, था बना जीवडो तरस।

× × ×

सखी भादवोरी भादवो मईनो नदिया म' री, या सूरत स्याम न फेरी।
तें मत जावो जी स्याम था बना जीवडो तरस।

पति पास नही है अत प्रत्येक मास पत्नी के लिए दुखद बन जाता है—चाहे वह चत्र हो अथवा वशाख या अय कोई मास। नीचे के गीतों म आनुप्रासिक छटा के साथ प्रत्यक मासगत प्रकृति के यापार के साथ विरह का वणन किया गया है—

जेठ जवानी छा रही सजी, अब बदनामी आसी जी,
पक रया दाड यू दाख टपक रस झरतो ई आसी जी।

× ×

असाढ मास बरखा रत आई बादल चढ चढ़ आसी जी,
गरड बीजली का घोर, गरड जीवडा ई जासी जी।

हाडोती लोक गीता मे प्रकृति क्रूर एव भयकर भी है। प्रकृति का एसा रूप केवल ग्रीष्म के वणनों म मिलता है। अपन प्रियतम का लू न लग जाए अत नायिका उसे रोकती है कि हे धन के लोभी, तू इस भीषण दुपहरी में बाहर मत जा—

सां चाल्यो र लोभी सां चाल्यो र प्यारा सां चाल्या र।
झगझगती दफरी म एक सां चाल्यो र।

और एक लोक गीत की नायिका ग्रीष्म ऋतु की धूप स प्राथना करती है कि तू जरा कम तीव्र पडना, क्योकि मेरे रगाल प्रियतम [illegible]—

तावडा मन्दरो-सो पडजे र, तावडा मन्दा सा पडज।
छैल भँवर जी को जीव नरम छ, करणी ता करज।

पवित्र दाम्पत्य प्रेम म पारस्परिक सुख दुख का [illegible] है, यह इस गीत स स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य प्रकृति से कितनी ही दूर हट जाए पर प्रकृति की सुन्दर सुन्दर वस्तुओं को चुनकर अपने प्रिय स्थान को सजाने का लोभ वह कभी संवरण कर सकेगा, यह कहना कठिन है। इसीलिए तो अति प्राचीन से ही माता थाडी का मन्दिर भी प्रकृति प्रदत्त सुन्दर सुन्दर वस्तुओं से सजा हुआ है—

माता थाडी का थो मढट मैं अवछल आऊँलो मोरियो।
अवछल आंबो वार रूँख लाग बरस सुवावणो
कोयल री मदरी सार बोल सोवटा रुळ आगणों।

हाडोती लोकगीतों में प्रकृति से सुन्दर सुन्दर उपमानों का भी चयन हुआ है। उपमान चयन करते समय प्रभाव साम्य की ओर लोक दृष्टि गई है। उपमान रूढ न होकर प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र से चुने गए हैं—

म्हारी जोडी रा जल्ला, मरगानणी रा जल्ला।
× × ×
लूगा लपटी बेलडी र थारी ज्यू लपटया भरतार।
× × ×
म्हारी ठडा जळ की माँछळी, पानीडा पा द री।
× × ×
सूरज म्हारा सायबा, चदा देवर जेठ।
नणदळ आभा बीजली चमक च्यारूँ एूट।

सारांश यह है कि हाडोती लोकगीतों में प्रकृति वर्णन कम मिलता है पर जितना मिलता है उसका कार्योचित महत्त्व है। उसमें अनावश्यक भरती या विस्तार कहीं नहीं है।

हाडौती लोक-नाटक

हाडौती का अचल अपने प्राकृतिक भावना से सम्पन्न है। प्रकृति की उदात्तता और उर्वरता यहा के लोक को सग्रह प्रवृत्ति स काफी दूर रखे हुए है। इसीलिए यहाँ का लोक मानस मनन और भावना की जिस भूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है, वह इसके लिए उपयुक्त है। उसने धम और साहित्य के क्षेत्र मे अपना सवन प्राप्त किया है। *जिस प्रकार अनेक धम व मतमतान्तरो को इस क्षेत्र म पोषण मिला* है उसी प्रकार लोक साहित्य के विविध रूप यहाँ पनपे हैं जिनमे यहा के लोक मानस का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

जो धम व साहित्य की अनवरत उपासना यहा के लोक जीवन का अग बनी हुई है, उसके प्रत्यक्ष दर्शन फसलो के कायकाल के उपरात इस अचल म होते हैं। यहाँ के ग्रामो मे भागवत का मास-पारायण, 'मानस या 'राधेश्याम रामायण' का सस्वर एव सव्याख्या पाठ, आल्हा रामायण' का चौपालों म उठता स्वर तजाजी का मास भर ढोलक मजीरे के साथ गायन दीपावली पर उठने वाली हीड' की गूज आदि उसके धम और साहित्य की सम्वित साधना के परिचायक हैं। उसकी कोई भी धार्मिक क्रिया लोकगीतो स विरहित होकर सम्पन्न नही होती है। यह रुचि समन्वय मनोरजन के साधन रूप म गृहीत लोक नाटको के प्रकार—लीलाओ को अभिनय की प्रेरणा देती है।

इससे यह निष्कष कदापि नही निकाला जा सकता है कि यहाँ का लोक-जीवन रग लोक की उपेक्षा करके चलता है। राम व कृष्ण जिसके आदश रहे हों सुन्दर [illegible] अवनी पर जिसके आराध्य-देवों ने क्रीडा की हो वह इस जगत स कैसे आँखें मूँद सकता है? [illegible] धरित्री के पवन [illegible] लहलहाते खेतों में उसका मन मयूर नाचता है सरिता के कल-कल प्रवाह म उसका कठ का [illegible] निनादित होता है ऋतुओं की आँख मिचौनी म उसका [illegible] [illegible] बनता है कोयल की कूक उसके हृदय की हूक को प्रकट करता है। [illegible] गीतों में उसने इन्हें गाया है। लोक नाटको मे इसकी यह जीवन-[illegible] [illegible] म [illegible] म प्रकट हुई है। ग्रामीण वातावरण म विरचित [illegible] [illegible]

खेलो मे राजा रानी के प्रेम-व्यापार को अभिनय का विषय बनाया है।

लीला और खेल

लीला और खेल इस प्रान्त के लोक नाट्य कला के विकसित प्रकार हैं। अपने अतीत म यहाँ के लोक ने मनोरजन के साधन रूप म जिन अविकसित नाट्य प्रकारो को अपनाया था उन्हें भी उसने अपने स्वभाववश छोड़ा नहीं है। कठपुतलियाँ के खेल पाबूजी के पड़ होली के अवसरो पर प्रदर्शित स्वांग बहुरूपियो द्वारा धारित विभिन्न स्वरूप भांडो द्वारा प्रदर्शित विभिन्न एकाभिनय स्त्री समाज द्वारा चौंछड़ो आदि प्रकार के अभिनयात्मक लोकगीत आदि म लोक नाटक के प्राचीन स्वरूपो के दर्शन होते हैं। इनके अतिरिक्त भी तमाशे' होलिकोत्सव के उपरान्त प्रदर्शित होते हैं। हाड़ा को तमासे नाम से सागोदा कस्बे म चत्र कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को प्रतिवर्ष लोक नाट्य होता है जिसम शृङ्गार हास्य, व्यग्य के विभिन्न विषयो को चुनकर विभिन्न कलाकारो द्वारा उनका अभिनय किया जाता है। स्त्री पुरुष की भूमिकाओ म उतरे पुरुष कलाकार अपनी कामुक और अश्लील चेष्टाओं द्वारा दर्शको का निर्बाध मनोरजन करते हैं जिनके काय व्यापार म अतमन का अमर्यादित प्रकाशन होता है। गद्य पद्यमय कथोप कथनो व नृत्य-सगीत से युक्त इस 'तमासे' को खाडा को हाड़ा भी कहा जाता है। 'खाडा खड्डा या गड्डा ही है जिसके निम्न मध्य भाग म अभिनीत तमाशा उसके ढलानो पर स्थित दर्शको की दृश्य श्रव्य क्षमता का पूर्ण उपयोग करने का सहज अवसर प्रदान करता है।

हाड़ौती लोक-नाटको के दो उल्लिखित प्रकार— लीला और खेल या ख्याल अति प्रचलित हैं। लीलाओ म रामलीला तेजाजीलीला रुक्मणी मगल, गोपी-चदलीला नरसीग लीला प्रहलाद लीला बिल्व मगल मोरध्वजलीला आदि प्रसिद्ध हैं। खेलो म खेंवरा, ढोला मरवण रज्या हीर फूलादे आदि उल्लेखनीय हैं। लीलाओ का अभिनय तो तत्तत्सम्बधित पुनीत तिथि के आसपास होता है पर खेलो के अभिनय मे ग्रामवासियो के अवकाश काल व प्रकृति की सुखदता ही निर्णायक बनते हैं। लीलाओ का अभिनय तो अनेक ग्रामो म अनेक दशको से नियमित रूप से हो रहा है पर खेलो का अभिनय उतना नियमित नहीं है उनका खडित प्रवाह इस उस ग्राम म मिलता है। 'रामलीला का उदय नीमोदा म हुआ है और वहीं से वह हाड़ौती अचल म फली है। व्याप्ति की दृष्टि से गोपीचद लीला' का स्थान सर्वोपरि है। उसकी प्रतियाँ स्थान स्थान पर मिल जाती हैं। खेवरा भी इस क्षेत्र का प्रिय खेल रहा है।

लीला का आधार

लीलाओं का आधार ईश्वरीय सत्ता की प्रतीति के साथ दर्शकों में भक्तिभाव उत्पन्न करना या बनाये रखना है। उनमें सगुण भक्ति मिलती है। इस जगत् में ईश्वर का प्रकट होकर लीला करना या भक्त की पुकार पर चले आकर उसे संकट से मुक्त कराना लीलाओं की स्वीकृतियाँ हैं। अन्य लीलाओं से गोपीचन्द लीला इस रूप में भिन्न है कि उसमें ईश्वर की प्रतीति तो है पर उसके निर्गुण सगुण किसी रूप का संकेत नहीं है। वहां वह न तो लीला करता है और न प्रकट होता है। लीला नाटक सुखांत होते हैं और मध्य में दुःख और संकटों की उत्तरोत्तर वृद्धि भक्त की परीक्षा के लिए दिखाई जाती है। आकस्मिकता, अस्वाभाविकता और अलौकिकता से युक्त लीलाओं के कथानक अंत तक कौतूहल जागृत रखते हैं और उनकी रसात्मकता में योग देते रहते हैं। उनमें भक्ति रस प्रधान होता है पर गोपीचन्द लीला का अंगीरस शान्त है। कथोपकथनों में नपातुलापन है—प्रत्येक पात्र समान वाचाल होता है। कथोपकथनों की प्रभावोत्पादकता प्रसंग व गायक के स्वर लोच पर आश्रित होती है।

रामलीला

यह 'रामचरित मानस' के आधार पर लिखी गई है जो लोक में व्याप्त भारतीय धर्म साधना के सतत प्रवाह और अखण्डता का प्रतीक बनकर आज भी ग्रामों में अत्यंत श्रद्धा और भक्ति से चैत्र मास में अभिनीत होती है। इस लीला का आरम्भ राम रावण के पूर्वज मनु की कथा से होता है। मानस के आधार पर बनाई गई यह लीला दार्शनिक गंभीर प्रसंगों को बचाकर चलती है केवल एम ही प्रसंग इसमें गृहीत हैं जो तानों (गीतात्मक कथोपकथनों) द्वारा दर्शकों का सहज ग्राह्य बन सकते हैं। महाकाव्य का नाटकीकरण करने के इस प्रयास में लोक रुचि और अभिनय के सीमित साधनों का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। विशाल वितान के नीचे तख्तों पर रखी कुर्सियों से इसका रंगमंच बनता है, जिसकी पृष्ठभूमि किसी मकान की दीवार या सामान्य से पर्दे द्वारा बनती है। अतः लीला में सीता की अग्नि परीक्षा जैसे प्रसंगों को छोड़ दिया गया है। कथा निर्वाह में 'मानस' की अनुरूपता है जो पात्रों के चरित्र चित्रण में भी मिलती है। पात्र वे ही हैं चित्रण की स्थूल रेखायें भी समान हैं पर चरित्र-चित्रण की जो सूक्ष्मता 'मानस' में मिलती है वह इस लीला में नहीं मिलती। परिचित कथा की मार्मिक घटनाओं को मंच पर घटित होते चमत्कारपूर्ण दिखाना नाटक के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है—उसमें रस प्रवाह के लिए पर्याप्त है। मन जितना सरल होगा संप्रेषण के लिए कला कौशल की उतनी ही कम अपेक्षा होगी। यदि

कारण है कि लोक नाटकों में दर्शकों को गतदृश्, अवरुद्ध कंठ या रोमांच की स्थिति में प्रायः देखा जाता है।

गोपीचन्द लीला

गोपीचन्द लीला की कथा ऐतिहासिक नायक गोपीचन्द (१०वीं से १२वीं शताब्दी के मध्य) की माता प्रेरणा से वैराग्य ग्रहण और तत्पश्चात् उसकी पत्नी के विरह-व्यथा में सीमित है। इस नाटक में नाटयगुण की अपेक्षा काव्य गुण अधिक हैं। नाटक में नायक गोपीचन्द जो वैराग्य धारण कर चुका है के द्वारा एक एक करके अपने सम्बन्धियों से भगवा वेश में भिक्षा याचना की जाती है। ये सभी दृश्य अत्यन्त ममस्पर्शी हैं और नाटक के प्राण भी हैं। गोपीचन्द लीला के कथोपकथन अत्यन्त ममस्पर्शी और मनोवैज्ञानिक हैं। विरक्त याचक पति द्वारा रानी को माँ शब्द द्वारा सम्बोधन किये जाने पर उसका उत्तर होता है—

माता तो कयरां म्हांस न कहो, म्हे राणी थांकी।

इस उत्तर में उसकी सारी व्यथा छिपी हुई है। ऐसे कथोपकथनों द्वारा लेखक पात्रों की चारित्रिक गहराइयों तक पहुंचता है जिनसे पात्रों का अंतर्बाह्य एक साथ ध्वनित होकर लीला के अल्प विकसित कथानक तक दर्शक की दृष्टि नहीं पहुंचने देता।

मोरधज लीला

मोरधज लीला की कथा का उत्तरार्द्ध जैमिनीयाश्वमेध पर्व पर आधारित और पूर्वार्द्ध कल्पना प्रसूत है। पूर्वार्द्ध कथा कल्पना में नायक के नाम का 'मोर' अंश हेतु बना है। परम भक्तिन पद्मावती का विवाह मोर के साथ इसलिए कर दिया जाता है कि वह यह स्वीकार नहीं करती कि वह अपने पिता के भाग्य का खाती है, अपने भाग्य का नहीं। मोर की मृत्यु पर उसके साथ सती होने के निश्चय का इसलिए क्रियान्वयन नहीं हो पाता कि शिव द्वारा मोर को राजा रूप में जीवित कर दिया जाता है। साधु वेश में ईश्वर पद्मावती और मोरधज की भक्ति-परीक्षा लेते हैं—उनके पुत्र रतनकुमार को आरे से चिरवाते हैं और परीक्षा में सफल उतरने पर वे प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। कथा में अलौकिक तत्वों की भरमार से ग्रामीण दर्शक की ईश्वर भक्ति तो दृढ़ होती है, पर रंगमंच की सीमाओं का ध्यान न रखने से दृश्य काव्य में भी दर्शन को श्रव्य काव्य के समान कल्पनाश्रयी बनना पड़ता है। लीला का अंगी रस वीर है। नायक और नायिका धर्मवीर कोटि में आते हैं।

प्रहलाद लीला

प्रहलाद लीला 'भागवत' पर आधत नाटक है, जिसमें मूल सूत्रों को पकड कर उनका विस्तार किया गया है। पात्र व वस्तु तो दोनों में समान है, पर विस्तारों में भिन्नता का कारण लोक रुचि और ग्राहक भिन्नता है। कथा का प्रारम्भ हरणाकुस (हिरण्य कशिपु) की पूर्वजन्म की कथा से होता है। सनका-दिक मुनियो से अभिशप्त हरणाकुस ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर राम विरोधी बन जाता है और अपने एक भक्त पुत्र प्रह्लाद पर अत्याचार करता है। उत्त रोत्तर बढ़ते अत्याचार से प्रह्लाद की भक्ति निखरती है और अन्त में स्वय भगवान नृसिंह रूप में प्रकट होकर हरणाकुस का वध करते हैं। नायक और खल नायक रूप में पुत्र व पिता का प्रस्तुत होना भक्ति की सर्वोपरिता को सिद्ध करने की दृष्टि से कलापूर्ण योजना है। पारिवारिक विघटन के स्थान पर इसे पारि-वारिक सगठन रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि असत और अन तिकता पर आधारित कोई भी इकाई विश्व के लिए घातक सिद्ध होती है और उसके सदाधारित होने पर धर्म की स्थापना होती है। 'ध्रुव लीला' में भी इसी प्रकार ध्रुव की घोर तपस्या दिखाई गई है। रुक्मिणी मगल में कृष्ण रुक्मिणी के विवाह की कथा से सम्बन्धित घटनाचक्र अपनाया गया है जिसमें 'ब्रह्मववर्त पुराण' का अनुसरण किया गया है।

खेल या ख्याल

हाड़ौती के खेल शृंगार रस प्रधान नाटक हैं, जिनके नायक राजा होते हैं। सामन्तकालीन विलासी प्रवृत्तियों की छाप वस्तु-सगठन और चरित्र चित्रण में मिलती है। कहीं-कहीं इस प्रवृत्ति का अमर्यादित रूप भी मिलता है, इससे नाटकों में अश्लील और कामुक कथोपकथन आ गये हैं। खेलों में प्रेम का त्रिकोण मिलता है। एक नायक को दो प्रेमिकाएँ प्यार करती हैं उनमें से एक नायिका होती है और दूसरी खलनायिका। खलनायिका के प्रपचों में नायक फसता है जिनसे मुक्त होने के साथ ही नायक नायिका का मिलन होता है और नाटक की समाप्ति हो जाती है। प्रेम का उदय पूवराग रूप में दिखाया गया है जो श्रवण दर्शन द्वारा उत्पन्न होता है। रज्याहीर' के अतिरिक्त सभी खेलों में लौकिक प्रेम चित्रित है। रज्या का प्रेम अलौकिक (इश्क हकीकी) है और सूफी शैली से प्रभावित है। कथा निर्वाह में प्रेम के त्रिकोण निर्वाह से उत्सुकता आद्यन्त बनी रहती है जो स्वाभाविक ढग से आई है।

[illegible]

[illegible] मिलते हैं।

ढोला मरवण

राजस्थान ही नहीं समस्त उत्तरी भारत में ढोला मरवण की कथा लोक साहित्य में विविध रूपों में प्रचलित है जिसमें प्रेम का निरूपण मिलता है। राजा नल के पुत्र ढोला का विवाह पूगल की राजकुमारी मरवण से अति बाल्यावस्था में होता है पर वह देश के [illegible] में भूल जाता है। मरवण चारण और तुर का भेजकर उसे सुध कराती है। जब ढोला मरवण द्वारा ली गई परीक्षा में खरा उतरता है तब दोनों का मिलन होता है। नायिका प्रधान इस नाटक की कथा की व्याप्ति का क्षेत्र इसकी सरलता सरसता और हृदय स्पर्शिता का ही है। ऐतिहासिक नामों और घटनाओं के द्वारा जिस पवित्र दाम्पत्य भाव की प्रतिष्ठा इस नाटक द्वारा की गई है वह भी इसके आकर्षण का कारण बना है। चरित्र चित्रण स्वाभाविक है जिसमें नायिका का पक्ष अधिक उभरा है। सामन्ती वातावरण के प्रभाव से संयोग शृंगार के चित्रण में अश्लीलता और ऐन्द्रियता आ गई है पर वियोग शृंगार के प्रसंग मर्मस्पर्शी और पात्रानुकूल हैं। पता नहीं सं० दुर्लभ से बना दुल्लह > दुल्हा > ढोला शब्द हाड़ौती क्षेत्र में पति के अर्थ में कब से रूढ़ हो रहा है पर उसमें घृणा और अनादर का भाव भी जुड़ गया है।

रंझा हीर

इस नाटक की कथा 'लैला मजनू' के आदर्श पर विकसित कहानी है। पंजाबी लोक साहित्य में व्याप्त इस प्रेम कथा को हाड़ौती क्षेत्र तक पहुँचने

के लिए कितनी यात्रा करनी पडी होगी, यह स्वतन्त्र चिन्तन का विषय है। केवल पजाबी मे ही इसने अनेक रूपा म अभिव्यक्ति पाई है। सरल और अविकसित कथानक का यह खेल प्रतीकात्मक भी है। जिसम रज्या साधक है, बीरबल दोस्त गुरु है और हीर ईश्वर है। जिस हीर का रज्या न प्राप्त किया है वहाँ बडे बडे सम्राट भी नही पहुँच पाते हैं—

बडा बडा गुलजार बादसा, जरा पास नई आव।

और नाटककार के अनुसार ही खुदा के भाव स यह कथा कही गइ है—

लला मजनू करी दोसती, भाव खुदा का रस्ता।

नाटक के नायक नायिका ऐतिहासिक पात्र है। नायिका क नख शिख का जितना सुन्दर वणन नाटक मे हुआ है वसा किसी अन्य नाटक म नहीं मिलता। उधर नायक म प्रेम की जो तडफन है वह भी उसे माग की बाधाओं अथवा फतमल के अवरोध की परवाह नही करने देती। सूफी कथाओं क अनुसरण पर विकसित यह नाटक अन्य खेलो से इस बात म भिन्न है कि इसका प्रस्तुत पक्ष अलौकिक प्रेम का सदेश देता है। दूसरे इसम कवित्व का निखार भी अपूर्व है। उपमानो का विधान परम्परागत नही है। किसी कवि हृदय की यह सरस नाट्य कृति अपनी शली मे विरल और कवित्व स भरपूर है।

खेलो म फूनादे आदि भी प्रेम आधारित कथा को अपनाकर चलत हैं। मनोरजन के लिए खेले जाने वाले इन खेलो म किसी जीवन दृष्टि का अभाव मिलता है।

हाडौती मच और अभिनय शली की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। छोटे से शामयाने के नीचे निर्मित मच जो चबूतरा भी हो सकता है और तारा खचित विशाल नील वितान से निर्मित दशकों की प्रेक्षा स्थली अभिनय क लिए पर्याप्त हैं। स्त्रीवेश म पुरुष कलाकारो द्वारा पूर्वाभ्यास के अभाव म प्रदर्शित कला ग्रामीणों के मनोरजन के लिए कम महत्त्वपूण नहीं होती। शिक्षा और सिनेमा के प्रसार ने साहित्यिक नाटको के लेखन और अभिनय को जो क्षति पहुचाई है वह लोक नाटको के जीवन को कितने समय तक बने रहने देगी, यह चिन्त्य विषय है। भविष्य पर दृष्टि गडी है। पर इनक विलुप्त होने से पूव ही इनका सरक्षण हो जाये तो पुरातत्त्वज्ञा क आनुमानिक शोध से य बच सकेंगे।

हाडौती के कवि सूर्यमलमिश्रण की 'वीर सतसई'[1] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि मे

'वीर सतसई' कवि सूर्यमल मिश्रण की कृति है जिसकी रचना उन्होंने तब की थी जब समय ने पलटा खाया था।[2] सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध के समय कवि को क्षत्रिय जाति मे व्याप्त आलस्य और ऐश से घोर निराशा हुई और उसने योद्धाओं मे प्राण फूँकने वाली तथा कायरो मे नाश उत्पन्न करने वाली 'सतसई' की रचना की।[3] वह अपनी रचना को काव्यगत परम्पराओ से मुक्त करके केवल वीररस के उत्साह वर्द्धक दोहे लिखने मे अपनी कला की परम साधना समझकर चला था। चारण काव्य मे चिर प्रतिष्ठित वयण सगाई अलंकार का तिरस्कार उसके इस विश्वास का द्योतक है।[4] इससे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि कवि ने कथन शैली के स्थान पर कथ्य को महत्त्व दिया है और परम्परा से छिन्न होकर स्वतन्त्र चेता और युग निर्माता के रूप मे काव्य और भाषा के क्षेत्र मे नवीनता और मौलिकता का परिचय दिया है।

वीर सतसई मे निम्नलिखित १० स्वर ध्वनियो के मिलती हैं—

अ, आ इ ई, उ, ऊ ए ऐ ओ एव औ। स ऋ स्वर का शुद्ध उच्चारण 'वीर सतसई' की भाषा मे नही मिलता। यह स्वर ध्वनि स्वतन्त्र रूप से पुस्तक मे प्रयुक्त नही हुई है। 'कथा (३६ २) शब्द मे इसकी मात्रा मिलती है पर

---

1 प्रस्तुत विश्लेषण मे नरोत्तमदास प्रभति विद्वानो द्वारा सम्पादित वीर सतसई (१६७) को आधार बनाया गया है।

2 बीकम बरसां बीतियां गण चौ चद गणीस।
विसहर तिथि गरु जेठ वदि समय पलट्टी सीस। ३

3 सत्तसई दोहा मयी मीसण सूरजमाल
जप मह खाणी जठ सण कायरां साल। ६

4 वयणसगाई वालियां पखीज रस पोस
वीर-हुतासन बोन मे दीस हेक न दोस। ६

द्रिग (१३५ १) शब्द म इसका स्थान रि न ले लिया है। ग्रन म 'ऋ' स्वर यहाँ रि ध्वनि बन गया है। उपयुक्त स्वर शब्द म ग्रादि मध्य तथा ग्रन्त्य स्थानो पर इस प्रकार प्रयुक्त हुए है—

	ग्रादि स्थानीय	मध्यस्थानीय	ग्रन्त्य स्थानीय
ग्र	ग्रगाऊ ४६ ४	सत्तसई ६ १	हृदय १५४ २
ग्रा	ग्रालम ४ ३	रजाट ५ २	ऊजळा ८ १
इ	इक डकी ४ १	तिथि ३ ३	गणवइ १ ३
ई	ईखो १६८ १	सोचीज १६० २	सोई ४५ १
उ	उण २७६ २	राउत १६२ २	गुरु २ ३
ऊ	ऊघडसी २६२ ४	पूगा १६२ ४	ग्रगाऊ ४८ ४१
ए	एथ १५४ ३	हुली १७५-१	मल्है १७७ ४
ए	ऐस ४-३	मैंगल १५४ ४	उपाडै १८६ २
ग्रो	ग्रोडो १५२ ४	डहोला १५२ १	लटकतो १६४ २
ग्रौ	ग्रौर १७८ २	सौक ७२ १	चौ ३ २

वीर सतसई की भाषा म स्वर सयोग के उदाहरण अत्यल्प हैं। कुछ स्वर सयोग य हैं—

ग्रइ गणवइ १ ३
ग्रई सत्तसई ६ १
ग्राई वयणसगाई ६ १
ग्राऊ ग्रगाऊ ४६ ४
ग्रोई सोई ४५ १

इसकी भाषा मे ग्रनुनासिक स्वर के उदाहरण भी मिलते हैं—

ग्रँ जँवाई १२१ २, मडा डे २३२ ४
ग्राँ डाढाँ २२ भाडाँ २३
इँ किँवाड १२२ ४
ईँ नीदाणो २३२ २
उँ मुँहगा १८२ १
ऊँ लूँबे १२२ २, भूँपडे २२६ १
एँ मँ २४ २
ऐँ मँगल १५४ ४, चैँक्सी ११८ ३

वीर सतसई म ग्रनुस्वार ध्वनि ग्रौर ग्रनुनासिक स्वर के लिए '॑' का प्रयोग हुग्रा है। किस शब्द म यह ग्रनुस्वार है ग्रौर कहाँ पर स्वर ग्रनुनासिकता का द्योतन करता है यह पाठक स्वय निणय कर लेता है। शुद्ध रूप म ग्रनुस्वार रूप मे तो कुछ शब्दो म ग्राता है, जसे—सस्य (७६ २) ग्रादि शब्दों म, ग्रन्य

ग"ो म कही वह अनुगामी व्यजन का पचम वण बनकर उच्चरित होता है और कहा वह न रूप म उच्चरित होता है।

'वीर सतसई' की भाषा म निम्नलिखित "यजनो का प्रयोग मिलता है—

क ख ग घ ङ

च छ, ज झ

ट ठ, ड, ढ, ड, ण

त् थ द, ध, न

प फ ब म म म्ह

य र ल 'ल्ह ळ व व स ह,

नासिक्य व्यजनो मे से ज "यजन के प्रयोग का इसमे सवथा अभाव है। ङ' का स्वतत्र प्रयोग नही हुआ है यह खुद सयुक्त व्यजन के प्रथम व्यजन के रूप मे मिलता है। ण का मूध य उच्चारण सयुक्त ध्वनि रूप म मिलता है वहाँ यह न' वत उच्चरित होता है। सतसई की लिपि व्यजन ध्वनिया हि दी मे नही है। इनम स प्रथम पाश्विक उत्क्षिप्त अल्पप्राण सघोष यजन है और दूसरा दन्तोष्ठ्य अल्पप्राण सघोष अद्ध स्वर है। इन दोनो का प्रयोग श" के आदि म नही मिलता है। म्ह म नासिक्य "यजनो का महाप्राण रूप है। ल्ह 'ल का महाप्राण रूप है। इनका प्रयोग श" के अ त म सतसई म नही मिलता है। पुस्तक की व्यजन माला म दो शिन "यजन ध्वनियाँ श और ष लिपिबद्ध नही है। जहाँ हि दी या अ य भाषाओ म श या ष आते है वहाँ इसमे 'स का प्रयोग मिलता है जस सोणित (शोणित) (१२४ ४) प्रकास (प्रकाश)—(१ ४) बरसा (वष) (१५५ ३) बिसहर (विषधर) (३)। ढ व्यजन सतसई मे नही है—इसके स्थान पर ढ प्रयुक्त हुआ है कढता (कढता) (१२ ३) चढत (चढत) (१०० २)। ङ यजन श"द के आदि म प्रयुक्त नही होता है।

आदि स्थानीय	मध्य स्थानीय	अ त्य स्थानीय
क कारण १ २	हकाल १८ ३	धडक १७ १
ख खीमो १६ १	सिखावणु ५८ २	राख (भस्म) २२३ ३
ग गाऊ १ ३	पूग ८६ ४	सुरग (स्वग) ६१ १
घ घर १६ १	ऊघडती १६२ ४	वघ १६ ४
ङ् X—	अङ्ग २१ २	
च चीताणी ७ २	मिच १ ३	कुच ८७ १
छ छानी १८ १	पाछा १७ '	मूछ २५ ४
ज जेय १६ ४	अजरा ८६ ३	जेज (दरी) १ २ २
झ झपट ५७ ४	मांझिया १२४ ३	सुझ १ ३

ट टोट १०६ १	वेटा ६४-३	निराट (निणय) ६४ २
ठ ठाकुरा २६३ १	छठै ६२ २	पीठ १७७ ४
ड डड २१८ ४	गेडा १६-३	करड (पिटारा) २१८ २
ढ ढीटा (धष्ट) ५६ ४	बाढण ५७ ३	—
ङ —	देसडा १६ ३	मड ४६ ४
ण —	जाणतौं ६१ १	जिणू १८ ४
त तूफ १ ३	छातिया १५२ १	कत १५४ २
थ थिया १८२ १	हाथळ १८ ३	जेथ १६-४
द देराणी १३५ २	हृद ५८ ३	वीद ८६ ३
ध धाडवियाँ २३० १	निधडक १६ १	वध १०४ ४
न निधडक १६ १	ननाण (ननिहाल) ६३ ३	मन ४४ १
प पूजाणो ७४ १	तापण ५८ ३	माप १४ ४
फ फिर २६३ ?	—	—
ब बलण ७६ १	लावड २८७ ३	नीब (नीम) २८८ ४
भ भूण ५७ २	उभ (उभय) २५१ ३	गरभ ५८ २
म मूट १ २	मामणा (बलया) १८२ ३	लगाम ८२ ४
म्ह म्हारे २८८ ४	साम्हा १७ ३	×
य —	कायर १६ २	सिवाय् ५८ २
र राणिया ८६ १	नेहरी १६ १	वीर १ ४
ल लाऊ १ १	सलूणो ५५ ३	अमल (अफीम) ४४ १
ळ —	हुकाळ १७ ४	दळ ४६ ४
ल्ह ल्होडी २५३ ४	मेल्हे १८७ ४	—
व वळ १ ३	अवेर २२६ २	विवेक २२८ २
व —	भोलाविया (बहकाना) २२ ४	वाव (वायु) १६ ४
स सदा १ २	देसडा १६ ३	दास १ २
ह हायळ १८ ३	आहण १८ २	दीह १ २

ङ ण य ळ तथा व का प्रयोग शब्द के आदि म नही मिलता है और [illegible] ल्ह के अन्त्यस्थानीय होने के उदाहरण भी सतसई म नही मिलते है, यद्यपि [illegible] की प्रकृति के अनुसार उनके तत्स्थानीय प्रयोग सम्भव है। व तथा [illegible] परिपूरक वितरण म प्रतीत होती हैं प्रथम का प्रयोग शब्दान्त म [illegible] है और दूसरी शब्द मध्य म नही आती है। शब्द मध्य में व केवल तत्सम [illegible] म मिलता है और व तद्भव शब्दों म। अत दोनों व एक ध्वनिग्राम [illegible] मानी जा सकती हैं। अनेक शब्दों म व का प्रयोग हिन्दी व [illegible] हुआ है—विणा (बिना), वजता (बजता)। ए' अद्धस्वर का [illegible] हिन्दी

मडल के सस्करण म तो शब्द के प्रारम्भ म स्वीकृति मिली है पर सपादक द्वय नरोत्तम दास स्वामी तथा नरेन्द्र भानावत द्वारा सपादित सतसई म उसे अस्वीकार किया गया है। य दोनो ही विद्वान राजस्थानी क विशपज्ञ हैं।

सतसई के पाठो म वतनी भेद भी मिलता है—जसे पाहुणा (८४ ३) व पावणो (१२६ १ तथा १२८ ३), जो उनके तत्कालीन उच्चारण विकल्प का सकेत करता है।

'सतसई' म सयुक्त व्यजन कम मिलत हैं। उसकी भाषा की प्रवत्ति सरली करण की ओर है। इससे *विक्रम > बीकम (३ १), मिश्रण > मीसण (६ २),* ईक्षण > ईखणो (१५४ ३), गयद > गींदवो (८३ ३) द त > दात (२१६ २) हो गये है। कवि का शब्द भडार तदभव शब्दो का है। अत सयुक्त व्यजन कम मिलते हैं। उनके अनेक प्रकार हैं—

पहल प्रकार के व्यजन सयोग प्राकृत की द्वित्वीकरण की प्रवत्ति के अवशप हैं। दूसरे नासिक्य व्यजन और स्पर्शों स बन है। तीसरे वे हैं जो अन्तस्था और स्पर्शों के सयोग स बन हैं—

१ द्वित्व श्रेणी के सयुक्त व्यजन—

क + क = हुक्कक १६६ ३
ग + ग = मग्गा २४८ १
च + छ = अच्छर २६० ३
ट + ठ = विणटठा ३५ ३
त + त = सत्तसई ६ १
त + थ = चवत्थे ११७ १
प + प = खप्पर १६८ २

२ मध्य नासिक व्यजन + स्पश—यद्यपि सतसई म नासिक व्यजनो के लिए पूव स्वर पर ' ' (बिन्दी) का प्रयोग हुआ है पर उच्चारण की दष्टि स उस परवर्ती स्पश का पचम व्यजन ही समझा जाना चाहिए—

मुद्रित रूप	उच्चारित रूप
ङ + क –कणी १६६ १ निसक १५७ १	कङ्कणी निसङ्क
= लकाळ ८५ ४	लङ्काळ
ङ + ग = रग	रङ्ग
ङ् + घ = सिघणी ८६ ३	सिङ्घणी
न + च = मच १०८ २	मञ्च
न + ज = कुजर ६८ ३	कुञ्जर
न् + ट = अछट वट १८, २, ४	अछण्ट वण्ट
न + ड = भडा, सिखडी २०१ २, ८	भण्डा, सिखण्डी

न+त=कत १५४ २ — क त
न+थ=पथ १२६ १ — प थ
न्+द=मदर १६४ २, हृदा २११ १ — म दर, ह दा
न+ध=सुगधी १२७ ३ — सुग धी
म+ब=अबक १३४ १ — अम्बक
म—भ=कुभकरण २०२ ३ — कुम्भकरण
=अचभो १७४ १ — अचम्भो

उपयु क्त दोनो प्रकार के सयुक्त व्यजन श द के प्रथम अक्षर म नही मिलते हैं।

३ अ य यजन+अ तस्थ

पर यजन—यू { क—य क्यू ६५ ४; ट—य बाटयो २८० ३; ढ—य डोढया ८३ १; थ—य हाथ्या १९२ ४; प—य प्याला २७१ ३ }

पर यजन—र { ज—र वज्र १६ ४; त—र त्रबक १३४ १, त्रण २२६ १; द—र द्रिग १३५ १, द्रमका १६५ १; प—र प्राणा ८७ ३; भ—र भ्रूण ५७ २, भ्रूह २४२ ४; स—र स्रवण १३५ २ }

ह+व   ह—व   ह्व१७८ ३, १८८ ३

तीसरे प्रकार के सयुक्त यजन श दो म से परवर्ती र' युक्त सयोग प्राय श के प्रथम अक्षर मे मिलता है और य तथा 'व' अद्ध स्वरा के सयोग से निर्मित सयुक्त यजन श द क आदि और मध्य मे मिलते हैं।

'सतसई की भाषा मे कुछ ध्वनि सयोग इसकी प्रकृतिगत विशेषता प्रतीत होते हैं—

(क) इय स बनने वाले—इय इया इयां इयो आदि क उदाहरण प्रचुरता स मिलते हैं—तियण (१६७ ३) ढोलणिय (२३२ ३) आविया (२६६-१), पधारिया (२१२ ३) अरिया (२३६ १) जोगिया (१५२ १) विछाणियो (२३३ १) पाळियो (२८६ ३)।

(ख) अय आय आव के सयोगा से बनन वाले रूप भी 'सतसई म मिलत है—

मणिहारी जा रो, परो,
अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया
विधवा कवण बणाव।

मे रेखांकित अश उक्त कथन को स्पष्ट करत हैं।

(ग) सतसई की भाषा की एक अन्य विशेषता इसकी श-दावली के उत्तरार्द्ध अश म ड् ध्वनि के प्रति अधिक भुकाव की है, जो व्यजन विकार और प्रत्यय रूप मे आयी है—

मड (४६ ४) कड्.व<स० कुटुम्ब, वहोड (बहोरि), अडवी (अरब) <स० अबुद, मील डा (१०६ १) माय-ड (८६ ३), मडाड (मड्+आड) (२३२ ४)।

(घ) पुस्तक की भाषा का 'ण्' की ओर भुकाव अधिक है। यह ध्वनि सस्कृत के 'ण्' की स्थानापन्न तो है ही, अनेक शब्दो म इसने न के स्थान को भी ग्रहण किया है।

प्राणा<स० प्राण, मिलण—हि० मिलन (१२८), उडाण—हि० उडान (१२७-४), उतारणो—हि० उतारना (१२८८ ३)

(ङ) महाप्राणता की रक्षा के प्रति पुस्तक की भाषा म विशेष आग्रह मिलता है, वह न ग्रासमान[1] के समान है न डा० एलन के निष्कर्षो[2] के समान। उसकी प्रवृत्ति भिन्न है। यहाँ महाप्राणता श-द म सवत्र रह सकती है।

दाहणहार (१६० ४), मध्य (१४५ ४), नह (१२४ १) मुद्वि (१०२ १) मुहारा (२३६ २)।

हेकलो (एकलो या अकेला), नह जस शब्दा म वह चारणो की उच्चारण शैली[3] के फलस्वरूप आई है।

रूप-विचार

सज्ञा

सतसई की भाषा में व्यजनांत और स्वरान्त दोना प्रकार के प्रातिपदिक शब्द मिलते हैं—

---

१ भोलानाथ तिवारी—भाषा विज्ञान पृ० ४११।

२ डॉ एलन बी एम ओ ए एम १९५७ ×× में छपे उनके लेख सम फोनो लॉजिकल फीचर्स ऑफ इन राजस्थानी पृ० १।

३ इसका कारण डिंगल-काव्य की उच्चारण-शैली ही प्रतीत होती है।

व्यजनान्त प्रातिपादिक

क-वर्गीय व्यजनान्त—घडक (१७ १) लाख (८१ २) खाग (१२० २) बघ (१६ ४)।
च-वर्गीय व्यजनान्त—वाच (३५ २), मूछ (२५६ ४), गज (२१२ २)।
ट वर्गीय व्यजनान्त—वट (६६ ४), जेठ (३ ३) डड (२१८ ४), मूढ (२ ४) जागड (८१ १) वारण (१५१ ६)।
त वर्गीय व्यजनान्त—रावत (१५३ २), हाथ (६२ ४), बीद (६८ २) जोध (८ २), दिन (१२० ३)।
प-वर्गीय व्यजनान्त—बाप (८६-१), कड्ब (६८ २), गरम (५६ २) जाम (पुत्री)।
य प्रत्य—माय (१२१ २)
र प्रत्य—घर (१२४)
ल् प्रत्य—सूरजमल (६ २)
ळ—प्रत्य—मंगळ (१५४ ४)
व् प्रत्य—धव् (पति) (७८-२)
स—प्रत्य— बरस (६०।२)
ह्—प्रत्य—सिपाह (१५२ ४)

स्वरान्त प्रातिपादिक

अ—हथ्य (१४५ २)
आ—पूचाळा (२४६ ३)
इ—गणवइ (१-३)
ई—घणी (८० ३) दाही (३५ ४)
उ—गुरु (३ ३)
ऊ—सिघू (८१ ३)
ओ—माहेरो ८६, अजको ७२ ३

सतसई के प्रातिपादिका मे कुछ स्वाथक प्रत्यय उल्लेखनीय हैं जिनका प्र योग लघुता, प्रियता या घृणा सूचकता मे होता है। वे हैं—

ड—मायड (८६-३), बाछडो (२७ ३), मुह-ड (२७० ४)
ब—गीदवो (गयद) ७३।३
क—जिको (२५७ ३) आदि सम्बन्धवाचक सवनामा में एवा अन्य शब्द के मध्य म भी प्रयुक्त हुआ है।
ळ्—डाहळ (११३ ४)

लिंग

'सतसई' के शब्द या तो पुल्लिंग म प्रयुक्त होते हैं या स्त्रीलिंग में। शब्दो का लिंग विधान भी हिन्दी के समान है। कुछ शब्दो में लिंग इस प्रकार है—

(१) समय पलटटी सीस (३ ४) में 'समय' का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है। टीकाकारा ने भी इसे 'नारी जातीय शब्द' कहा है। जबकि इसका प्रयोग सस्कृत हिन्दी व राजस्थानी में पुल्लिंग में होता है।

(२) वीरा रो कुल वाट' (५ ४) में 'वाट' शब्द का पुल्लिंग प्रयोग सस्कृत के अनुकूल है, पर हिन्दी क 'तुम्हारो बाट देखो' और राजस्थानी के 'गगाजी की बाट' जसे प्रयोगो के वह प्रतिकूल है। स्वय कवि भी इसका प्रयोग एक अन्य स्थल पर स्त्रीलिंग में करता है— किण दिन देखू बाटडी।

(३) इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर दीधी नर नर दाह में 'दाह' स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है, जबकि यह पुल्लिंग शब्द है।

सज्ञाएँ स्वरात एव व्यजनान्त दोनो हैं—

सज्ञा की व्यजनान्तता उसके लिंग निणय मे सहायक नहीं है। व्यजनात (उच्चारण मे) सज्ञाएँ दोनो लिंगो मे प्रयुक्त हुई हैं—

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
साव (पुत्र) (६० २)	धण (२५८ १)
वीद (५६-४)	नीद (८८ ८)
सीह (५६ ४)	जाम (७८ ४) (पुत्री)

न सज्ञा शब्दो की स्वरान्तता लिंग निणय मे सहायक है—

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
गणवइ (गणपति) (२ ३)	तिथि (३ ३)
ढोली (१५ १)	लोहारी (१४५ १)

फिर भी सतसई का आकारान्त सज्ञाएँ पुल्लिंग में होती हैं। यदि यह कह दिया जाए कि राजस्थानी क अनेक प्रातिपदिक शब्द निलिंगीय हैं और उनके ओ प्रत्यय लगाने से वे पुल्लिंग शब्द और 'ई' प्रत्यय लगाने स स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी, जसे—

निलिंगीय प्रातिपदिक शब्द	पुल्लिंग शब्द	स्त्रीलिंग शब्द
नीदाण	नीदाणो (सोया हुआ आत्मा) (२१६ १)	नीदाणी
कळज	कळजो (२४२ १)	कळजी
बाटड	बाटडो (२७-३)	बाटडी

पर अनेक शब्द एस हैं जो ओकारान्त म पुल्लिंग तो हैं पर उनका स्त्रीलिंग नहीं मिलता है जसे—मरोगा (१६० ३), बधावणा (२५७ १)

स्त्रीलिंग का दूसरा प्रत्यय अण है जो प्राय कतृ वाचक सज्ञाओं में मिलता

है। जसे—ढोलण (ढोल+अण) <ढोली (१५ १), साथण (साथ+अण) <साथी (२५६ १), दरजण (२७३)।

णी—स्त्री वाचक अ य प्रत्यय है जो कन वाचक सनाओ के साथ लगता है, जसे—रगरेजणी (रगरेज+णी) <रगरेज, जोगणी (जोग+णी) <जोगी (१४६ १)

आणी—यह स्त्रीवाचक प्रत्यय कुछ श न्दो मे मिलता है जसे— ठकुराणी (ठाकुर+आणी) <ठाकुर (५१ १)

उपयु क्त सभी प्रत्यय 'ई रूपग्राम के सरूप हैं, क्योकि ये परस्पर परिपूरक वितरण म है। 'ई रूपग्राम इस आधार पर माना जाना चाहिए कि अनेक शब्द रूपो मे—सना, सवनाम विनेपण, कृन्त क्रिया आदि रूपा मे—स्त्री प्रत्यय—ई प्रत्यय प्रयुक्त होता है अ य प्रत्यय तो अपना अस्तित्व सज्ञा शब्दो तक ही रखते हैं—

क्रिया रूपों मे (१) क धण माट विलोवसी (३१ ३)
(२) दीधी धर धर जोगणी (१४' १)
विनेषण रूपों मे (१) बीजी दीठा कुळ बहू (२४६ ३)
(२) दरजण लावी आगिया (२७३ १)
सम्ब ध कारकीय परसग मे—ओप बाडी अमल री (१८८ १)
राजा कुल री रीत (३८ ४)
कृदतीय रूपों मे बळती आख वीर धण (२५ १)
फरती रा लीधा फिर (२६३ ३)

और ये व्याकरणिक रूप उनसे अ वित सना न्द के लिंग बोध कराते हैं। अनेक अवस्थाओ मे तो लिंग का निर्धारण इ ही के द्वारा समव है (जसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है)।

वचन

सतसई' मे सना श दा का प्रयोग दोनो वचनो मे मिलता है—एकवचन और बहुवचन मे।

अनेक श द ऐसे हैं जिनके एकवचन और बहुवचन के रूप समान हैं—

एकवचन	बहुवचन
दिन	दिन (माट घणा दिन माखता (१३ १)
जागड (ढोली)	जागड (मामी ! जागड आपणा) (८१ १)
घाव	घाव (माला हदा घाव) (२४०-४)
पख व दाग	पख, दाग (दो-ही पख विण दाग) (२५४ ३)

पुल्लिग शब्दो में बहुवचन का प्रत्यय 'आ' है, जो ओकारान्त शब्दों म स्पष्ट काय करता दीख पड़ता है—

एक वचन	बहुवचन
पावणो (१२८ ३)	पावणा (विण नूत घण पावणा) (१२५ १)
मुडडो	मुहडा (मुहडा और सिकारसी) (२४ १)
माथो	माथा (माथा जिण दिन मागणा) (५० ३)

स्त्रीलिंग में यह प्रत्यय—आँ रूप मे मिलता है—

एकवचन	बहुवचन
सती	सतियाँ (ठकुराणी सतिया मण) (५१-१)
ढाल	ढालां (उरसां ढालां ऊघडी) (१४३ १)
कौड़ी	कौडियाँ (कण कण सच कौडियाँ) (२२१ ३)

बहुवचन को विकारी रूपो का प्रत्यय उभय लिंग मे आँ है—

१ *कटकाँ ढाहि कळज (१६६ ४)*
२ तेगा री घण त्रास (२६६ २)
३ हूँ बलिहारी कायरां (२८२ ³)
४ पड डहोळा छातियाँ (१५२ १)
५ रग अ चाही जोगियाँ (१६२ १)

ईकारान्त शब्दो मे आँ या आ प्रत्यय लगन पर-ई ह्रस्व हो जाती है और ह्रस्वीभूत 'इ तथा प्रत्यय के बीच अर्द्ध स्वर य का आगम हो जाता है।

'सतसई मे संज्ञा शब्दो का वचन बोध विशेषण सम्बन्ध कारकीय परसग क्रिया रूप, कृदन्त तथा सवनामो मे उसी प्रकार होता है जिस प्रकार इनसे लिंग बोध होता है, जसे—

विशेषण द्वारा वचन बोध

माट घणा दिन माखता (१३ १) मे 'दिन' का बहुवचन मे होना घणां विशेषण से ज्ञात होता है।

क्रिया द्वारा वचन बोध

(२) काय कलाली ! छल कियो(११२ १) में 'कियो' की एकवचनीय ओकारान्तता 'छल की एकवचनता प्रकट करती है।

क्रिया द्वारा वचन-बोध

(३) वागा ढोल विणास(१११ २) में ढोल के बहुवचन का बोध वागा क्रिया से होता है।

(४) घर घर वैर विसावियां (१२२ १) में कर्मकारकीय 'वैर' शब्द के बहुवचन का बोध 'विसावियां' से होता है।

परसर्ग द्वारा वचन-बोध

कुमकरण रा झाडिया, जाण बदर जाय। (२०२ ३,४) बहुवचन 'बदर' का बोध 'रा' परसर्ग से होता है।

कृदन्त द्वारा वचन-बोध

अन्तिम उदाहरण का भूतकालिक 'झाडिया' 'बदर' के बहुवचन होने का संकेत देता है।

सर्वनाम द्वारा वचन-बोध

(क) वै दिन जो कायर वणो (७६ ३) 'वै' से बहुवचन 'दिन' का बोध।
(ख) श्रो गहणो श्रो वेस अब (२६८ १) 'वेस' की एकवचनता का बोध 'श्रो' सर्वनाम से होता है जो यहाँ विशेषण रूप में प्रयुक्त है।
(ग) अरिया जे त्रण आपणा (२३६ १) में 'त्रण' की बहुवचनता 'जे' से प्रकट होती है।

कुछ बहुवचन ज्ञापक शब्दावली द्वारा भी शब्दों के बहुवचन का बोध कराया गया है—

(१) मरता सब खेती मिटै (१२५ १) खेती का बहुवचन में होना 'सब' से प्रकट होता है।

एकवचन के लिए बहुवचन क्रिया का प्रयोग संज्ञा की आदरार्थकता में हुआ है—धावाँ वत पधारिया (२१२ ३)।

कारक

'सतसई' की भाषा उस अवस्था की प्रतिनिधि है, जिसमें संज्ञा शब्द विभिन्न प्रकार की कारकीय अभिव्यक्ति करने के लिए कारकीय प्रत्यय तो पूर्णरूपेण अपनाये हुए थे, पर परसर्गों का आश्रय कभी कभी ले पाते थे। इससे अभिव्यक्तिगत अस्पष्टता बनी हुई थी। सतसई की भाषा में इस दृष्टि से वियोगावस्था कम मिलती है, उसकी संयोगावस्था ही संज्ञा रूपों में दिखाई देती है।

(क) सतसई' काव्य पुस्तक है और काव्य पुस्तक में शब्द स्थापन का विशेष महत्त्व नहीं होता—अन्वय द्वारा अर्थ ग्रहण किया जाता है—पर उसका सर्वथा तिरस्कार भी नहीं होता। 'सतसई' में कारक का बोध शब्द के स्थल विशेष पर प्रयोग से भी होता है चाहे शब्द अपने निर्विभक्ति रूप में प्रयुक्त हो।

१ हूरग थी निग भाव (५२ १) कर्ताकारकीय रूप
२ राणी इसडा रावता, हाथां नीब बटाय (५० ३) कर्मकारकीय रूप
३ हेली ! कूप पताडिया। (२८८ १) करणकारकीय रूप
४ हूँ पनिहारी रानियां भूण निनावण भाय (५७ १२) सम्प्रदान
५ रण पागै दुगो रहे (१० १) अपादान
६ घटां गो घर घट (१८३ ४) } सम्बन्ध ,
रगपट उमरी राह (२१६) }
७ पग पग भूंडो पाटदू (७८ ३) अधिकरण ,

कर्ता और कर्मकारक में ऐसे उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं पर शेष कारकों में इनकी कमी है।

(ग) परसर्ग रहित सविभक्ति रूपों द्वारा भी विभिन्न प्रकार की कारकीय अभिव्यक्ति हुई है—

१ कर्ताकारकीय रूप ए व आं विभक्ति संयुक्त—
(क) धांर पळांगां भूँवडो दव कीय न हुत (१०५ १२)
(ग) उरगां ढालां ऊघडी (१४३ १)

२ कर्मकारकीय रूप आं इय विभक्ति युक्त—
(क) करवां ढाहि कळज (१६६ ४)
(ख) जम री मूछां ताणवो (२१ १)
(ग) ढोलणिय घण तेडव (२३२ २)

३ करणकारकीय रूप आं विभक्ति युक्त—
(क) हाथां नीब बटाय (५० ३)
(ख) सग धारा घोडा गुरा दाब मजरा देस। (३६ ३ ४)

४ सम्प्रदान कारकीय रूप आं विभक्ति युक्त—
(क) पहली बाहुण पाहुणा मडीज मनुहार। (२६ ३ ४)
(ख) राणी इसडा रावता हाथां नीब बटाय। (५० ४)

५ अपादान कारकीय रूप आँ विभक्ति युक्त—
(क) करूँ पहाडां पार (२६ ४)

६ सम्बन्ध कारकीय रूप आं विभक्ति युक्त—
(क) कुबणतां कर कापिया (१५१ ३)
(ख) देखो देवर आछट हाथळ हाथ्यां सीस (१६२ ३ ४)
(ग) मोग मिलीज किम जठ नरां नारियां नास (१०३ १,२)

७ अधिकरण कारकीय रूप - आं' ऐ' तथा 'ए विभक्ति युक्त—
(क) उरसा ढालां ऊघडी (१४३ १)
(ख) बरी वाड बामडो (१२० १)

(ग) आज घरे सासू ! वह (६८-१)

८ सम्बोधन कारकीय रूप 'आ' विभक्ति युक्त—

(क) कत न छेड़ो ठाकरा ! (२१८ १)

(ख) इ धर आया रावता ! (२१५ २)

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि पुस्तक की भाषा में 'आँ' परसगरहित सविभक्ति शब्दरूपों की प्रचुरता है। बहुवचन की विभक्ति 'आँ' है जो सभी कारकीय रूपों में मिलती है। एकवचन की विभक्ति 'ए' है जो कर्त्ता, कर्म, सप्रदान व अधिकरण में मिलती है, पर प्रथम दो में इसका अत्यल्प प्रयोग हुआ है। अधिकरण में 'ए' विभक्ति भी मिलती है।

(ग) सतसई की भाषा में परसर्गों की अल्पता है—

१ कर्त्ताकारकीय व अपादान कारकीय रूपों में कोई परसग नहीं मिला है।

२ कमकारकीय रूप का परसग है—नू

(क) पायो हेली ! पूत नू सोमल थण लपटाय (६३ १ २)

३ करण कारण के परसग—थी हूत हू

(क) देखीज निज गोख थी (१६१ १)

(ख) हूँ मड हूत विसेस (२७१-४)

(ग) मं थण रहणी हाथ हू (२६० ३)

४ सप्रदान-कारक का परसग—नू

(क) घण नू आळगसी घणो
सुणिया वागो धार। (७१ १,२)

५ सम्बन्ध कारक के परसग—री, रा रे, रो चा, हुदा हुद

(क) मिजमानी री वार (१३६ ४)

(ख) देराणी द्रिग गीध रो (१३५ १)

(ग) फूलता रण कत र (१४३ ३)

(घ) मदर रो मरडाट (१६४ ४)

(ट) गुड घणी चा गाजणा (१३५ ३)
कोसाँ चा सुण ढोलडा (१३५ ३)

(च) मालाँ हुदा घाव (२४० ४)

(छ) जाँघाँ हुन्द तापण (५८ ३)

६ अधिकरण कारक का परसग—म

(क) पोत जणी मे मोतियाँ जूडो मगळ दत। (१०२-२ ४)

(ख) चवरी में पीछ णियो कवरी मरणी कत। (१०० ३ ४)

(घ) इन परसर्गों म सम्बन्ध कारक के परसग बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ये भेदक और भेद्य (अधिकरण और अधिकृत सम्बन्ध) के सम्बन्ध के साथ भेद्य के लिंग

वचन व कारक की भी अभिव्यक्ति करते हैं—

ओकारान्त परसग—भेद पुल्लिग, एकवचन और अविकारी कर्ता

आकारान्त परसग—भेद पुल्लिग बहुवचन और अविकारी कर्ता
व अधिकरण के अतिरिक्त कारक रूप

ईकारान्त „ भेद स्त्रीलिग सभी वचन व सभी कारकों म

ऐकारान्त „ भेद पुल्लिग और अधिकरण कारक म

(ङ) 'सतसई' म कुछ शब्द परसर्गों क स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं—

(१) बाजां र सिर चेतणा, भूणां भवण मिलाय (५६ २, ४) करण कारक

(२) कत परां बलिहार (१८० २) सप्रदान कारक।

सवनाम

'सतसई मे सभी प्रकार के सवनाम प्रयुक्त हुए हैं। पुरुष वाचक तथा सम्बन्ध वाचक सवनामो के प्रयोग का आधिक्य है। वतमान राजस्थानी सवनाम रूपो मे विद्यमान लिंग अभिव्यक्ति का पुस्तक की भाषा म पूर्ण प्रस्फुटन नही हुआ है। अत सवनामो के लिंग निर्धारण के लिए क्रिया विशेषण आदि शब्द रूपो की ओर देखना पडता है। किसी एक रूप का विभिन्न कारको म प्रयोग उनकी उल्लेखनीय विशेषता है—

सतसई के सवनाम रूप ये हैं—

(१) पुरुष वाचक सवनाम—इसके तीन भेद मिलते हैं—

(क) उत्तम पुरुष—इसके दोनो रूप इस प्रकार है—

अविकारी रूप—मैं हूँ

विकारी रूप—मो मूझ, म्हा

उपयुक्त रूप एक वचन के है। बहुवचन के रूप सतसई मे नही मिलते अविकारी रूपो का एकवचनीय प्रयोग देखिये—

मैं तो बिन सब हाँसिया

× × ×

हूँ मड हूत विसेस (२७६ १ ४)

मो, मूझ व म्हा म से प्रथम दो के स्वतत्र प्रयोग विविध कारको मे मिलते हैं पर तृतीय—म्हा के साथ सवत्र सम्बध कारकीय परसग रो, री आदि मिलते हैं—

(१) अतरो अतर मूझ प (६३ ३) सम्बन्ध कारक म प्रयोग

(२) भी यण जहर समान (६२ ३) „

स-परसर्गीय रूप इस प्रकार हैं—

(१) मो-नू मोछ कचुवै
हाथ दिखातां लाज। (२६६ ३ ४) कमकारकीय रूप

विकारी रूपो का सविमक्ति प्रयोग भी मिलता है—

पडतो मोय पुगाय (२८९-४)—कमकारक मे -'य' विभक्ति

(ख) मध्यम पुरुष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	तू	थे
विकारी रूप	तो, था, तुझ	था

एक वचन के विकारी रूपो का प्रयोग स्वतत्र और परसग सहित दोनों रूपा म मिलता है—

स्वतत्र प्रयोग

(१) लोहारी ! तो पीव रा, वले न पूजू हथ्थ (१४५ १, २) सम्बन्ध कारकीय प्रयोग

(२) तुझ मडाई होय (२७६ ४) सम्बन्ध कारकीय प्रयोग

स परसग प्रयोग

कुळ थारो रण पोढणू (८८ १) सम्बन्ध कारकीय रूप

बहुवचन का अविकारी रूप -थे है जिसका इस प्रकार प्रयोग होता है—
मामी थे गिणता खरच (१९१ ३)

यहाँ कर्ता कारकरूप है पर इसका प्रयोग एकवचन के लिए आदरायकता मे हुआ है।

बहुवचन के विकारी रूप—था का प्रयोग इस प्रकार मिलता है—
बाई ! थां रो वीर (१९८ ४)

यहाँ 'था' एकवचन के लिए आदरायकता म प्रयुक्त है। इस प्रकार के प्रयोग राजस्थानी की अपनी विशेषता है।

उपर्युक्त सवनाम प्रकारो मे लिंग भेद नही मिलता है—

(ग) अन्य पुरुष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	सो	व
विकारी रूप	ति तिण, उण सो	उण सो, ति

इस सवनाम के विकारी रूप ही अधिक मिलते हैं। लगिक भिन्नता के उदाहरण पुस्तक म नही मिलते हैं। अविकारी रूप में सो और 'व का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

(क) सो भी सो धक कत री (२४२ ३)

(ग) थ मड़ पास हाय (३१ ४)

दोनों उदाहरणों म सवनामा का प्रयोग विशेषण रूप म है।

विकारी रूपा के प्रयोग इस प्रकार हैं—

(क) तिण रो बाल्हो बाछो (२७ ३) सम्बन्ध कारक म

(ख) बीर तिको ही बीर (३७ ४) ,,

(ग) उण मड़ एक महेग (७६ २) करण कारक रूप मे

(घ) सो सील मो गाढ़ (१११ ४) कम ,,

(२) निश्चय वाचक सवनाम—

इसके दो भेद होते हैं— (क) निकटवर्ती
(ख) दूरवर्ती

(अ) निकटवर्ती—

अविकारी रूप — यो एह

विकारी रूप — या (स्त्री) इण, ई

अविकारी रूपा म उदाहरण हैं—

(क) यो गहणो यो वेस अब, कीज धारण कत (२६८ १२) कर्ताकारक रूप मे।

(ख) ईखो सगत एह (५३ २)

विकारी रूपो के उदाहरण हैं—

(क) इण रो मोगण हार जे (१६५ २) सम्बन्ध कारक में

(ख) इ रजपूती वाह। (२१५ ४) सम्प्रदान कारक मे

(ग) या कमणती करी और न पूग ओज (१७८ १२) कमकारक म

(आ) दूरवर्ती—पुरुष वाचक सवनाम के अन्य पुरुष वाले रूपो से इसके रूप अभिन्न हैं।

(३) अनिश्चय वाचक

इस प्रकार के सवनाम का प्रयोग सतसई म नही मिलता है। कुछ ऐसे शब्द अवश्य हैं, जो इस सवनाम की भाति प्रयुक्त है—

आन—निरदय दीठा आन मड (१८५ १) विशेषण रूप मे प्रयुक्त है।

ओरा—औरां रा कर औरठ (१८४ १)

सब—मैं तो बिन सब हांसिया (२७६ १)

(४) सम्बन्ध वाचक

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	जिको	जे
विकारी	जि, जिण जेण	ज्यां

अविकारी रूपा के प्रयोग इस प्रकार हैं—

(क) हथलेव जुडियो जिको (२५७ ३) विशेषण रूप म

(ख) अरिया जे त्रण आपणा (२३७ १) विशेषण रूप मे

विकारी रूपा के प्रयोग इस प्रकार मिलते हैं—

(क) जिण रै होदै जेठ (२३३ ४) सम्ब ध कारक

(ख) जिके तमासो जाण (१६६ ४) कम कारक म

(ग) जाणो मामी ! जेण गज लटक्तो नीसाण (१६४ १२) विशेषण रूप मे, अधिकरण कारक म ।

नित्य सम्बन्धी

नित्य सम्बन्धी सवनाम रूप मे 'सा शब्द' का प्रयाग मिलता है जिसके प्रयोगो पर अन्य पुरुष उपनीषक से विचार किया जा चुका है। उसके विकारी रूप तिण का प्रयोग इस प्रकार मिलता है—

जिण वन भूल न जावतां

× × ×

तिण विन जबुक ताखडा (२०)

यहाँ अधिकरण कारक म विशेषण रूप म तिण शब्द प्रयुक्त है ।

जिके सम्बन्ध वाचक सवनाम का प्रयोग नित्य सम्बन्धी रूप मे मिलता है—

अरियाँ जे त्रण आपणा

× × ×

जाण म धव दीधा जिके (२३६ ३)

वै अन्य पुरुष सवनाम भी इस रूप म प्रयुक्त हुआ है—

रांड हुवा जीवै जिके

× × ×

व भड धान हाय । (३३ ४)

(६) प्रश्नवाचक

इस सवनाम के नामिक क व्यजन को दो स्वरा के साथ प्रयक्त देख सकते हैं—या तो अग्रस्वर ई या पश्चस्वर अ या उसके अन्य ध्वनि रूपा के साथ—

अविकारी रूप—की, कवण कुण
विकारी रूप—किण, किसूं

इनके उदाहरण हैं—

(क) रीत मरता ढील की ? (६२ ३) अविकारी कर्ता रूप म
(ख) कवण हवाल सीह ? (१७ ४) ,
(ग) किण कीध किण हुय्य (१०६ २) करण कारक रूप म
(घ) किसू बुलायो काळ (२३२ २) „

निज वाचक

इसके रूप इस प्रकार हैं—
अविकारी रूप—आप, निज
विकारी रूप आपणा आप रा निज

उदाहरण हैं—

(क) आप बसाया भूपडा (अविकारी कर्त्ता रूप म)
(ख) अरियाँ जे भण आपणा (२३६ १) सम्बन्ध कारक रूप मे
(ग) आंटो सासू आपरो (१६७ १) „
(घ) देखीज निज गोख थी (१६१ १) अपादान कारक रूप मे

आदरवाचक

आदर वाचक आप' का प्रयोग अल्प हुआ है। इसके स्थान पर अन्य पुरुष वाचक बहुवचन सवनाम का प्रयोग मिलता है—

बाई ! थां री बीर (१६८ ४)

सतसई मे कुछ सयुक्त सवनाम भी मिलते हैं—

(१) सो कुण—सो-कुण कत समान (१७३ १)

कुछ अवस्थाओ म विशेषण का प्रयोग सवनाम की तरह हुआ है—

(१) दूजो की जम डड (२१३ ४)
(२) आधा किण सिर ओलसी (१७६ ३)

विशेषण

सतसई मे विशेषणो का प्रयोग कम मिलता है। इसके विशेषण रूपो को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—

(क) स प्रत्यय विशेषण
(ख) अप्रत्यय विशेषण

(क) अप्रत्यय वि पण वे हैं जो वाक्य मे प्रयुक्त होने के लिए किसी प्रत्यय को अपनाते हैं और अपने विशेष्य के अनुसार स्वरूप बनाते हैं—

(१) एको रग उतारणो
जेठ न दीठो जग। (१८८ ३ ४) } पुल्लिग के ओकारान्त
(२) कत घणो ही साकडो (१८६ १) } विशेषण

(३) काळी अच्छर एक न कर (२६१ १) } स्त्रीलिंग के ईकारा त
(४) जा घर खेती ऊजळी (२८-१) } विशेषण

इनम से पुल्लिग ओकारा त विशेषण का विकारी रूप आकारान्त है, जो सभी विशेष्य रूपो क साथ प्रयुक्त होता है—

(१) काला दरड करल (२०८-४)
(२) नीचा करसी नण (२६४ ४)

ऐसे स्त्रीलिंगीय विशेषणो की विशेषता उनकी ईकारान्तता है, जो सभी रूपो मे पाई जाती है—

(१) पहली वाहण पाहुणां
मडोज मनुहार। (१६३ ३,४) (यहाँ विशेष्य स्त्री 'मनुहार' है)
(२) खागा महणी खात (१७२-२)

पर कही कही ईकारान्त विशेषण (जहाँ वह सस्कृत पुल्लिग विशेषण से आया है) भी पुल्लिग मे प्रयुक्त हुआ है—

ढोल सुणाता मगळी (१०० १)
यहाँ मगळी > सस्कृत मागलिक से बना है।

बहुवचन के विकारी रूप का प्रत्यय आ है, जिसका प्रयोग इस प्रकार मिलता है—

लाखां बातां एकलो—म लाखां और बातां' का प्रत्यय विधान अवलोकनीय है। यह विशेषण विशेष्य की एकरूपता सस्कृत शैली पर है।

कहीं विशेषण ने ही विशेष्य के कारक रूप को अपना लिया है और विशेष्य अविकृत है (० प्रत्यययुक्त है)—

पहर चवत्थ पौढियो (११७ १) मे 'चवत्थे' शब्द अधिकरण की 'ऐ' विभक्ति युक्त है।

(ख) 'सतसई' के कुछ विशेषण अप्रत्यय भी हैं—

(१) पैलां दहल अपार (२०७ २)
(२) घण तोपां घर धूजिया (१५४-१)

'घण जसे विशेषण क सप्रत्यय होने के उदाहरण भी 'सतसई मे मिल जाते हैं—कत घणाम साकडो (१८६ १)

(ग) गुण वाचक विशेषण—

(१) पलां दहल अपार (२०७ २)

(२) नीचा करसी नण

(३) काळी ग्रच्छर। ग्रादि इसके उदाहरण हैं।

(ख) सख्यावाचक विशेषण के विविध प्रकार मिलत हैं—

(१) पला सुणिया पाँच स (१७६ १) (गणना वाचक)

(२) पहली वाहण पाहुणां मडीज मनुहार। (१६७ ४) (क्रम वाचक)

(३) उग जिम दूणा ग्रमल (१५६ १) (ग्रावत्ति वाचक)

(४) मव ग्रधूर भावतो (१७५ ३) (ग्रपूण सख्या वाचक)

(ग) परिमाण वाचक विशेषण 'ग्रतरो ग्रतर' (६३ ३) जसे वाक्यांशो मे देखा जा सकता है।

सभी प्रकार के विशेषणा का प्रत्यय विधान सना के समान है।

क्रियापद

'सतसई' क क्रिया पद हि दी के समान वियोगावस्था को नही प्राप्त हुए हैं। वे प्राय प्रा० मा० ग्रा० भा० स विकसित सोपान रूप म दिखाई देत हैं। इस लिए उनम न सहायक क्रिया की सहायता स ग्रभिव्यक्ति को समाला गया है ग्रौर न सयुक्त क्रिया रूपा के प्रयोग बाहुल्य द्वारा उसे समथ व सशक्त बनाया गया है। भूतकाल रूपा तथा कृद तीय रूपा म बने क्रियारूपो म सतसई कार का ग्रभि यक्ति कौशल निहित ह। क्रिया रूपो की स्थिति ऐसी ही है जसी सना रूपा की। वहा तो कुछ परसर्गो न ग्रभिव्यक्ति को सँभाला है पर यहाँ सहायक क्रिया के ग्रभाव म ग्रभि यक्ति शिथिल हो गई है। यहाँ एक क्रिया रूप ग्रनेक प्रकार के कालो की ग्रभिव्यक्ति करता है ग्रौर ग्रनेक क्रियारूप एक काल की ग्रभि यक्ति करते हैं।

सतसई' की ग्रधिकाश धातुएँ एकाक्षरी हैं। वे स्वरान्त तथा व्यजनान्त हैं—

(क) स्वरान्त धातुएँ

ग्रा (२ १) ला (१ १), गा (१ १), खो (१६ १), ल (३१ ३) जो (देखना) (१४८ ४) हो, जो (६५ ३) ग्रादि।

(ख) व्यजनान्त धातुए

कढ् (निकलना) (१२ ३) तड (नाचना) (१७ ३) मिच (नेत्र बद करना) (१७ ३), पूग (पहुँच) (१४६ ४), वार (योछावर करना) (१०६ ३) सुण (१०४ १), पिछाण (१०० २) ग्रादि।

कुछ धातुए उपसग के योग से बनी हैं—

मा+हण् (मारना) (१८ ३) वि+लग—लगना (१०२ २), वि+लस

(गोमित होना) (१०८ १), प्रवेख (प्रव+ईख—देखना) (२४६-१)

कुछ धातुएँ दो या अधिक अक्षरों की भी हैं—

दकाल (११-२) हकाल (१७ ४)

ऐसी धातुएँ सनाम्रा से बनी हैं और नामधातु श्रेणी की हैं)

प्रेरणार्थक धातु-रूप

ऐसे धातु रूपों का व्युत्पादक प्रत्यय आ आव या -आ ड् है, जिनके धातु म सयोग के साथ उसके प्रथम स्वर का ह्रस्वीकरण हो जाता है—

छिप+आ ~~~ आव्=छिपा ~~~ छिपाव (११० १)

दिख+आ ~~~ आव्=दिखा ~~~ दिखाव (२०८ ४)

धाप+आ ~~~ आड=धपा ~~~ धपाड (२८८ ३)

छोड़+आ ~~~ आव=छुड़ा, ~~~ छुड़ाव

सतसई की भाषा म -आव प्रत्यय का बाहुल्य है। 'आड' प्रत्यय असामान्य है। इसका प्रयोग कुछ ही वस्तुओं के साथ मिलता है।

नामधातुएँ

नामधातुओं का प्रयोग 'सतसई की भाषा म मिलता है। ऐसी धातुओं की सख्या अ यल्प है। उनम से एक-दो हैं—

बटक (८६ ४) (बटका सज्ञा से बनी है)

अपण (२६१ २) (आपण सवनाम से बनी है)

इनका रूप विधान साधारण धातुओं की तरह होता है।

वाच्य

सतसई म कर्तृ तथा कर्मवाच्यों के प्रयोग मिलते हैं। कर्म वाच्य बनाने की प्रक्रिया सयोगात्मक अवस्था म है। हि दी के समान √जा धातु के रूपों का प्रयोग करके इसका निर्माण नहीं किया जाता है। अपितु इसके लिए प्रत्ययों का उपयोग होता है जो धातु के साथ लगकर उसे कर्मवाच्य का रूप प्रदान करते हैं। इसकी प्रक्रिया ऐसी है—

आय — प्रत्यय द्वारा — कह+आय = कहाय (३०८)

ईज — प्रत्यय द्वारा — सोच+ईज+ऐ=सोचीज (१६० २)

पेख+ईज+ऐ=पेखीज (२६६ ३)

अव — प्रत्यय द्वारा — जाण+अव+इयो=जाणवियो (भूत०) (६५ ४)

इस प्रकार निर्मित धातुओं के रूप शेष क्रियारूपों के समान चलते हैं, उनम

किसी भिन्न तिङतो को अपनाने की प्रक्रिया सतसई मे नही है।

कृदन्त

सतसई' की भाषा मे कृदन्तो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी भाषा वह है जिसमे कृदन्तो ने क्रियारूपो का स्थान तो ले लिया था पर अर्थगत स्पष्टता लाने के लिए उन्होंने उत्तरकाल में जिन सहायक क्रियारूपो को अपनाया था वे अपना अस्तित्व सतसई' तक नही बना पाए थे। अत कृदन्तो में रूपात्मक स्पष्टता के साथ अर्थगत स्पष्टता नही मिलती है।

(क) वर्तमान कालिक कृदन्त

सतसई में वर्तमान कालिक कृदन्तो के दो रूप मिलते हैं—

(१) व्यजनान्त धातुओ के साथ अत या अन्त प्रत्यय लगता है।

(२) वे जो स्वरान्त धातुओ से बनते है और जिनमें -अत प्रत्यय के पूर्व व का आगम विकल्प रूप से होता है। रूप इस प्रकार हैं—

(क) लटक + अत = लटकतो (१६४ १)
(ख) कूक + अत = कूकतो (६ १)
(ग) जा + अत = जाता (६८ १)
(घ) जी + व + अत = जीवता (२५६ १)
(ङ) मर + अ त — मरता (६२ २)

उपर्युक्त कृदन्तो के रूप सप्रत्यय विशेषणवत होते है। अविकारी रूप में इनके प्रत्यय एकवचन व बहुवचन में क्रमश ओ एव आ है। विकारी रूपो के वचनगत रूप आ एव आ प्रत्यययुक्त होते हैं।

तात्कालिक कृदन्त

ऐसे कृदन्तो के रूप वर्तमान कालिक कृदन्तो से अभिन्न हैं—बोलता जल लाव (२४० २) में तात्कालिकता का बोध किसी व्याकरणिक युक्ति—प्रत्यय या शब्द से न होकर प्रसग विशेष में कृदन्त रूप के प्रयोग पर निर्भर करता है। नजर पडता नाह (१५२ २) स भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

भूतकालिक कृदन्त

सतसई मे भूतकालिक कृदन्तो की रचना निम्न प्रकार से सम्पन्न होती है—

(क) धातु + आ प्रत्यय के योग से
(ख) 'क के अनुसार, पर ओ प्रत्यय के पूर्व इय प्रत्यय जोडकर

(ग) 'क' के अनुसार पर ओ प्रत्यय के पूव आण प्रत्यय जोडकर इसके उदाहरण ये हैं—

(क) विणठठ+ओ=विणट्ठा (२४१-४) (नण विणटठा नाह)

(ख) धपाड +इय+ओ=धपाडियो (२८८) (हली दूध धपाडियो)

(ग) पूज+अण्+ओ=पूजाणो (७४ १) (पूजाणो गज मोतिया)

भूतकालिक कृदन्ता के अविकारी एव विकारी रूप वतमानकालिक कृदन्ता के समान है। इनका प्रयोग विशेषणवत होता है।

स्त्रीलिंग की प्रक्रिया धातु+ई प्रत्यय के योग से सम्पन्न होती हैं। ऐसे शब्दा की रूप रचना ईकारान्त सना शब्दा के समान है।

काल-रचना

सामान्य वतमान काल या वतमान निश्चयाथ

इस काल की रचना इन प्रत्यया द्वारा होती है—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	ऊ	आ
मध्यम पुरुष	ऐ	ओ
अन्य पुरुष	ऐ	ऐ

उदाहरण इस प्रकार मिलते हैं—

(१) सदा कहाऊँ दास (१ १)
(२) करू पहाडा पार (२६ १) } एक वचनीय रूप
(३) वाढा चावुक-वण (१२ ३)—बहुवचन
(४) व मी सुणता ऊफण (७ ३)—अन्य पुरुष बहुवचन
(५) कायर री धण यू कहै (२८० १)—अन्य पुरुष एकवचन
(६) मोळा की चहरो मना (१२ १)—मध्यम पुरुष बहुवचन

ऐस प्रत्ययों के पूव स्वरान्त धातुआ के पश्चात -व जोड दिया जाता है। वतमान निश्चयाथ की अभिव्यक्ति उपयुक्त प्रत्यय विधान के अतिरिक्त अन्य कई रूपो से हुई है—

(क) आय प्रत्यय द्वारा (१) सो वानत कहाय (८० ४) कमवाच्य मे
(२) सकट हचकरा खाय (२७ २) कमवाच्य म
(ख) अत प्रत्यय द्वारा (१) मूछाँ मूह चढन (१००-१)
(२) जाणा विरद जपत (१३ ४)
(ग) -य प्रत्यय द्वारा (१) रावत जायी नौकरी सदा सुहागण हाय। (२५५ ३,४)

(२) लोह् चिणा र चावण दान विहूणा थाय।
(२१६ १,२)

(घ) ए प्रत्यय द्वारा —रण पाछे दुमनो रहे (३० १)

वतमान सभावनाथ—इस काल की अभि प्रवित वतमान कालिक कृदन्ता के प्रयोग से होती है—

वसण सती धण रगनी
दीधी आस छुडाय (२८४ ३ ४)

भूत निश्चयाथ

इसका प्रत्यय विधान इस पकार है—

	पुल्लिग		स्त्रीलिग
	एकवचन	बहुवचन	उभय वचन
उत्तम पुरुप	ओ इयो	आ इया	ई
मध्यम पुरुप	ओ इयो	आ इया	ई
अय पुरुप	ओ इयो	आ इया	ई

उपयु क्त तालिका स यह ज्ञात होता है कि सभी पुरुषो मे पुल्लिग—एकवचन का प्रत्यय आ है और बहुवचन का आ। स्त्रीलिग म ई प्रत्यय आता है। ये प्रत्यय धातु क बाद आते है। कुछ उदाहरण ये हैं—

(१) क दीठो हय आवतो (१५० १) ⎫ कर्ता कारक एकवचन
(२) हली क्वण सिखावियो (१५० ३) ⎭ पुल्लिग

(३) क पोता र बेटा थियो ⎫ कर्ता कारक, एक वचन, पुल्लिग
ख घर म बाधियो जाळ ⎭

(४) पूत महा दुख पालियो (२६५ १)

(५) अरज गमाणी आव (४ ४) (कम—एक वचन स्त्रीलिग)

(६) समय पलट्टी सीस (कर्ता—एकवचन, पुल्लिग पर स्त्रीलिग रूप म प्रयुक्त)

(७) आणी उर जाणी अतुन (कम—स्त्रीलिग एकवचन)

(८) देराणी कुल ऊजळी (२५७ १) (कर्ता—स्त्रीलिग एकवचन)

कुछ क्रिया रूपो में प्रत्यय और धातु के बीच ध जाड दिया जाता है—

धातु+ध+प्रत्यय (तालिका के अनुसार)

(१) लीधो धण नाळेर (२४६ ४)

(२) दीधो लोह् तुराय (६ ४)

(३) दीधा कर गुहाग (२८ ४)

यह रचना विधान कुछ धातुओ स ही सम्बधित है वे हैं-ल, द आदि।

पूण भूत

इस काल की अभिव्यक्ति के लिए कोई स्वतन्त्र रूप रचना नही है । भूत निश्चयाथ के रूपा द्वारा ही इसकी अभिव्यक्ति प्रसगाधीन होकर आती है—

(१) हथळेवै जुडियो जिको
हम न छूट हाथ } (२५७ ३ ४)

(२) अरिया जे त्रण आपणा
मुख मुख लीधा माय } (२३६ २)

(३) वळण कढायो अतर धण
मुहधो लसी कोण } (२७५ ३, ४)

मे उक्तकाल के अथ प्रसग के आधार पर ही ग्रहण किए जाएँगे ।

अपूण भूत

इस काल की अभियक्ति सतसई मे वतमान कालिक कृदतीय रूप से हुई है । इसलिए इसमे वचन व लिंग भेद भी मिलता है—

(१) भट घणा दिन माखता (१३ १) (कता—बहुवचन पुल्लिग)

(२) दिन दिन मोळो दीसतो (६५ १) (कम—एक वचन, पुल्लिग)

(३) कुळ थारो रण पौढणू
मोनू कहती माय } (८७ १ २) (कर्ता—स्त्रीलिंग एकवचन)

भविष्यत् निश्चयाथ

इस काल रचना का प्रत्यय सी है, जो सभी पुरुषा लिंगो और वचना म मिलता है—

(१) चूडो जिन दिन चाहसी (कर्ता—स्त्रीलिंग एकवचन)

(२) मुडिया मिलसी गीदवो (कम—पुल्लिग एकवचन)

(३) माला ऊ गिह माजसी (२४ ३) (कर्ता—पुल्लिग एकवचन)

इसो सी का ध्वनि रूपातर ही प्रत्यय भी इसी काल की अभियक्ति करता है पर इसके उदाहरण अत्यल्प हैं—

हैक साय धपाडही (१६८ ३)

इन नियमित प्रत्ययो के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रत्यय भी इस काल की अभियक्ति इस प्रकार करते हैं—

आय लाजा बाता एकला
चूडो मो न लजाय (१०२ ४) (लजायेगा)

एस भव दूज मेटेस (२७३ ४) (मटगा)

आ　रहिया नह वीर ही
　जाणा विरद जपत (१३ ३, ४) (जानेगा)
ईजे　जीव विणट्टा जे कढो,
　नाम रहीजे नेक (७५ ३ ४)

विधि—

इस क्रिया रूप के दो भेद सतसई मे मिलते हैं—
क—आदरायक
ख—सामान्य
विधि प्रयोग प्राय मध्यम पुरुष म ही हुआ है—

(क) आदरायक विधि—
इसके प्रत्यय हैं ईज ईजिये
१ सोचीना न लगार (१६० २)
२ लहग मूझ लुकीजिय (२६६-३)
३ दरजण ! लावी आगिया
आणीज अब मूझ । } (२७२ १ २)

(ख) सामान्य विधि—
(१) इसम धातु मूल रूप म ० शून्य प्रत्यय के साथ प्रयुक्त होती है—
(क) उठ थियो घमसाण (६२ ४)
(ख) बाला ! चाल म बीसरे
(ग) वेटी ! वलण निवार } एकवचन के साथ
(२) ए प्रत्यय द्वारा—
बाला ! चाल म बीसरे (६२ १) एकवचन के साथ
(३) ओ प्रत्यय द्वारा—
नरा ! न ठीणा नारियां ईयो सगत एह (बहुवचन के साथ)
(४) -य प्रत्यय द्वारा—
रण खेता मिड जाय (६१ २)

पूर्वकालिक क्रिया

इस क्रिया रूप की रचना अनेक प्रत्ययों स होती है। व हैं—आय, कर ० (शून्य) ए र। इस क्रिया का प्रयाग अव्यय क समान हाता है। उदाहरण हैं—
-आय (क) आव भोग उठाय (२५ ४)
(ख) डाड़ा प्रलय [खाय (२८ ४)

अ तिण सूरा रो नाव ले (३१ ३)
  कस बाध करवाळ (३२ २)
ए मोला जाणे भूलिया (६० १)
र मोलो देर मुलाय (६१ ४)
-कर इसे प्रत्यय कहना उपयुक्त नही है अपितु यह सयुक्त क्रिया का उत्तराश है पर प्रत्यय रूप ही दिखाई देती है—डाकी ठाकर सहण कर (४० १)

क्रियार्थक सज्ञा

इसका प्रयोग सज्ञा के समान होता है पर लिंग भेद इसम नही होता और न वचन भेद। यह रूप दो प्रत्यय द्वारा सम्पन्न होता है—

अण—(व्यजनान्त धातुओ के साथ)—चढणो (८२ १), लूटण (२२७ १)
स्वरान्त धातुओं के साथ अण के पूव व प्रत्यय आता है—
पीवण खावण
व—लेवो (सो लेवो कुल सार) (१६७ १)
ण—जाण न घव दीधा जिके (२६३ ३)

वस्तुत ण प्रत्यय अण' प्रत्यय ही है जिसका आदि स्वर 'अ' धातुआ के साथ सधि को प्राप्त हो जाता है।

सयुक्त क्रियापद

'सतसई म सयुक्त क्रिया के उदाहरण अधिक नही मिलते हैं। इसकी रचना में जा ल दे आदि के क्रियारूप उत्तरान्त म काल के लिए प्रयुक्त होते हैं और मूल धातु के पूवकालिक रूप या सज्ञायक क्रिया रूप पूर्वांग रूप मे आते हैं। इसकी रचना इस प्रकार मिलती है—

मूल क्रिया का पूव कालिक रूप + गौण क्रिया का काल रूप
(क)—१ लीधी तेग उठाय (६७ ४)
२ लीधा लोह लुवाय
३ जम नरकां ले जाय
४ हू पच हारी हूलसी (११ ३)

(ख) मूल क्रिया का सज्ञायक क्रिया रूप + गौण क्रिया का काल रूप—
जाण न घव दीधा जिके (२३६ १) (जाने नही दिया)

हाडौती लोकगाथा तेजाजी
एक आलोचना

वीर पूजा की भावना लोक मानस की एक विशेषता रही है। उसने अपने आस पास या दूर—कहीं भी जो कुछ पाया है उसी को स्वीकार कर लिया है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह केवल ऐसे ही वीरों को स्वीकार करे जो किसी महान उद्देश्य को लेकर कर्म-क्षेत्र में उतरे हों। उसके लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि वह वीर है। उसकी वीरता किस कोटि की है अथवा किस उद्देश्य से प्रेरित है यह उसकी भावना के लिए अतक्य है। लोक मानस भावना जगत् में पहुँचने के लिए तर्क का आश्रय नहीं खोजता है। इसीलिए हाडौती लोक मानस ने झबरया पृथ्वीराज आदि तक को गाथाओं में बाँध लिया है।[1]

ऐसे लोक मानस को सौभाग्य से तेजाजी नामक वीर की जीवन कथा, जिसमें वीरता को प्रेरणा सर्वभूतहितकामना ने दी थी, मिल गई और वह अपनी सम्पूर्ण भावना से उस पर मुग्ध हो गया। तब फिर क्या था, एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व में उसने देवत्व का आरोप कर दिया।[2] उसका यह विश्वास भी कि विषधर के विष का कुप्रभाव इस वीर की कृपा से शान्त हो जाता है[3] धीरे धीरे

---

१ झबर्‍या नामक चमार विद्रोही बनकर दस्युवृत्ति का अनुसरण करने लगा था। हाडौती में यों तो चम्मारां को छोरो झबरयो मारलीनूं र आदि शब्दावली में लोकगाथा प्रचलित है। × × × पृथ्वीराज मऊ का छोटा सा जागीदार था जो दुराग्रही और क्रोधी था। उसने अनुचित कारण पर भी अपने मामा का वध किया था।

२ लोक मानस में ऐसी परिणतियाँ प्राय होती रहती हैं। देखिये डा॰ सत्येन्द्र, मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन पृ ३

३ विश्व में सर्प की १७ ० जातियाँ हैं, जिनमें से केवल ३०० विषैली और घातक होती हैं। भारत और पाकिस्तान में १० व्यक्ति प्रतिदिन सर्प दंश से मरते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि इतनी मौतें सर्प की विषक्रिया से नहीं होती हैं। इसका एक भाग भय और अज्ञान से भी मरता है।

के जी घारपुरे—दी स्नेक्स आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान चतुर्थ संस्करण पृ॰ ९२ व १०६

पुष्ट होता चला गया, जिसको वपन करन मे नाग शब्द हेतु बनकर आया है।

'तेजाजी हाडौती की प्रमुख लाक गाथा है। यह गाथा इस क्षत्र म एक मास तक गाई जाती है। इसका गायन एक मास पूव प्रारम्भ होकर भाद्रपद शुक्ल दशमी[1] को समाप्त हो जाता है। गाने की दो शलियाँ हाडौती म प्रचलित हैं। एक शली के अनुसार सभी गायक तजाजी क भडे के आसपास एकत्र होकर ढोलक और मजीर के साथ गाते हैं और दूसरी शली मे कोई कुशल गायक नेतृत्व करता है और शेष समूह उसके अनुकरण पर गाता है। यहाँ भी वाद्ययत्रो का उपयोग होता है। य वाद्ययत्र ढोलक, मजीर और कभी कभी अलगोजे होत है। वाद्ययत्र एव गायक के स्वरा म ऐसी लय रहती है माना गीत उछलता-कूदता आग बढ रहा हो।

लोकमान्यता के अनुसार किसी भी सप दशित व्यक्ति से तेजाजी के नाम की 'डसी (स० दश > प्रा० डस > हा० डस + ई = सूत्र विशेष) बाँध देने पर वह विषक्रिया स मुक्त हो जाता है। वह सूत्र तजा दशमी को काटा जाता है जिसे डसी काटना कहत है। कहते है कि इस अवसर पर कई दिन या मास पूव सप दशित व्यक्ति विष प्रभाव से युक्त हो जाता है और भूमने लगता है जिसे हाडौती म मड आना (विषाक्तावस्था म तन्द्रायुक्त होना) कहते है। कुछ समय उपरा त देवकृपा स वह व्यक्ति पुन स्वस्थ हो जाता है।[2] इसी विश्वास पर हाडौती के ग्रामिणो म तजाजी अति पूज्य दव बने हुए है और इस लिए वे उक्त तिथि पर व्रत रखत हैं और दवदशन करके कृतकृत्य होते हैं।

कथानक

तेजाजी इस गाथा के नायक है। उनका विवाह अति बाल्यकाल म भोडछ से हो जाता है, जिसका उनको स्मरण तक नही रहता है। वे बाल्यकाल से ही धार्मिक वत्ति के हैं अत ईश्वराधना म लग रहते हैं। एक बार जब व तालाब मे स्नान करके ईश्वर की पूजा म बठ होत है तब भाभा गूजरी उन्हे बताती है कि वे विवाहित है और उनकी पत्नी उसके गाव की है। इस बात पर पहले तो उन्हें विश्वास नही होता है पर माता क 'हा कहन पर वे निश्चय कर लेत हैं कि अपनी ससुराल जाएगे। उनकी माँ तथा भाभी उन्हे रोकती है पर वे अपने निणय पर अडिग रहत हैं। तब उनकी एक शत होती है कि रक्षाब धन का त्योहार

---

१ यह तेजाजी की पुण्यतिथि मानी जाती है और इसी तिथि को विभिन्न स्थानो पर मेले लगते हैं।

२ बूँदी म एस अवसर पर एक सपदशित कुतिया के शरीर स रक्त लेकर उसकी डाक्टरी परीक्षा की गई थी और उसम रक्त का विषयक्त पाया था एसा वहाँ के तत्कालीन प्रधान मत्री रावटसन के आदेश पर किया गया बताते हैं।

मा रहा है मन पहले वे (तेजाजी) माग ी बहिन का उसकी सगुराल से ल आयें तत्पश्चात् अपनी सगुराल जायें। तेजाजी इस बात को स्वीकार कर लेते हैं और गाड़ी बल तैयार कर अपनी बहिन का लेने उसकी ससुराल चले जाते हैं। माग म उ हे कुछ लुटेरे मिलते हैं, किन्तु व यह वचन देकर आगे बढ़ जाते हैं कि लौटते समय मैं बहुत सा धन लाऊगा।

बहिन की ससुराल म उनका भव्य स्वागत होता है, पर उसके सास-ससुर कृषि काय की व्यस्तता क कारण उसे नही भेजते हैं। अन्त उन्हें निराश खाली हाथ लौटना पडता है। जब वे गाव की सीमा पर पहुचते हैं तो पीछे स उनकी बहिन दौडी चली आती है। इस पर तेजाजी को आपत्ति होती है—

सबकी लनाई आई छ न बनिड म्हारो
सालीणा सगा सू टटण न कर आई न।

जब बहिन द्वारा उन्हे यह विश्वास दिलाया जाता है कि उस अपनी ससुराल की स्वीकृति प्राप्त है तब तेजाजी उस अपने साथ लेकर चल देते हैं। और वहां पहुँचते हैं जहां वे लुटेरो का वचन दे आये थे। अनेक लुटेरो से भाई को घिरा देखकर बहिन तो रोने लगती है क्योंकि वह समझती है कि उसका भाई तो अकेला है और लुटेरे अनेक हैं। तब तेजाजी एक युक्ति स काम लेते हैं वे अपना भाला सूखे पेड क तने म अपनी शक्ति भर प्रहार से गाड दते हैं और लुटेरो स कहते हैं कि पहले इस पड स निकाल लाओ फिर मुझस लडने की चेष्टा करो। समस्त लुटेरे मिलकर उसे खीचने का निष्फल प्रयास करते हैं। तब उनकी बहिन जाकर उसे सहज ही खीच लाती है—

भालो तो पाडर लाई छ र घोडीजी हाळा
भालो पाडयो छ बावां हाथ सू।

तब लुटेरे भाग खडे होते हैं।

तेजाजी अपनी बहिन को लेकर घर पहुचते हैं और अपनी माता और भाभी से ससुराल जाने की स्वीकृति चाहते हैं। पहले तो दोनो उ हे फुसलाती हैं कि वे ससुराल न जायें पर उनके न मानने पर भाभी उन्हे इन शब्दो के साथ विदा करती है—

भलाइ भलाई जाव न र देवरिया म्हारा।
धोळा की धरत्या प होवगी थारी देवळी।

पर वे इसकी चि ता नही करते है कि भावी क्या है। माग म उ हे अनेक अप शकुन होते है। पहले काले कलशा से युक्त पनिहारिन मिलती है फिर काले बलो से हल जोतता किसान मिलता है, आगे बायी ओर कोचर पक्षी बोलता मिलता है और अ त म बांइ ओर ही काले हिरण दिखाई दते हैं। पर तेजाजी अपनी शक्ति के बल पर उ हे अनुकूल बनाते चलते हैं—

बावा सू, जीवा आजा ये कोचर राणी,
न तो दूगू भलका को बखेरू थारा पालडा।

व कुछ आगे बढत हैं और देखत है कि एक वन जल रहा है और ग्वाले अपनी गाया की घास के जलने स व्यथित और निष्क्रिय हैं। वे उस भयकर ज्वाला को बुझाने मे जुट जात हैं। उन्ह एक जलता हुआ सप दिखाई देता है जिसे वे उस ज्वाल माल से निकालकर बचा लत हैं पर चेतना प्राप्ति पर सप तेजाजी पर कुपित होता है और कहता है, तुमने अच्छा नही किया। मरी पत्नी तो जल गई और मुझे बचा लिया। अत मैं तुम्हे काटूगा।" व सप के इस निणय स चिन्तित नही होते हैं, अपितु उसे वचन देत हैं कि पहल व अपनी ससुराल हो आते हैं और लौटत समय सप को अपनी मनोकामना पूरी करने का अवसर देंगे।

ससुराल माग म व बद्रीनारायण के दशन करते हैं। जब कुछ आग बढते हैं तब देखते हैं कि बनास नदी बाढ ग्रस्त है। अपनी घोडी को वे नदी मे डाल दते हैं और पार हो जाते है। ससुराल म पहुचकर वे एक उद्यान म विश्राम करते हैं, जो उनके ससुर का है। तेजाजी की पत्नी मोडल को जब मालिन द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसके पति आये हुए है तब वह अपनी सहेलियो को लेकर झूलने के बहाने उद्यान म पहुँचती है और तेजाजी से उपालम्भ के स्वर म कहती है—

घणा दना मैं आयो छ र सावद म्हारा,
थारा लेखा सू तो मोडळ मरगी फीर मैं।

जब तेजाजी अपने ससुर गह पहुँचत हैं तब वहाँ उनका उचित स्वागत सत्कार नही होता है। उनके भोजन में तुलस्या वाकळा ग्वारी और तल परासे जाते हैं। यह व्यवहार उन्ह असह्य होता है और व अपने घर लौट पडत हैं। उनकी पत्नी मोडळ और उसकी सहेली माना गूजरी उन्ह मनाती है—

गूजरा की माना लूमी छ हे घोडी जी हाळा,
ऊँगी मोडळ लूमी छ पगा क पागड।

अत तजाजी अपने लौटने के निश्चय को बदल कर माना का आतिथ्य स्वीकार कर लत है।

तेजाजी रात्रि म सुख निद्रा म सोये हुए होत हैं। उस समय माना गूजरी क्रन्दन कर उठती है कि उसकी सारी गायें चोर चुरा ले गय। तजाजी उसे परामश दत हैं कि जाकर अपने जागीरदार से प्राथना कर। वह गाँव भर म अपनी करुण पुकार करती है पर उसकी कोई सहायता नही करता है, तब उसे कहना पडता है—

गांव में तो राडा बस छ र जीजाजी म्हारा
मरदा न फरी छ लाबी काचळी।

इस पर अकेले तजाजी गायो को लौटा लाने क लिए चल पडत है। वे लुटेरो

को समझाते हैं कि आप हमारे मामा है, अत आपको हमारी गायें लौटा देनी चाहिए। तेजाजी की यह बात चोरों को प्रभावित कर जाती है। तेजाजी सारी गायें लेकर लौट आते हैं। पर जब माता गजरी देखती है कि गायों में एक काना बछड़ा नहीं है तब वह पूर्ववत बिलखने लगती है। तेजाजी पुन जाते हैं पर इस बार चोरों और उनमें भीषण युद्ध होता है। ये अकेले होते हैं और वे अनेक। इसलिए ये बुरी तरह घायल होते हैं—

सुवामण तो लोयो घोडी का डोल प--
भेलो होग्यो छ र घोडी जी हाळा,
सुवा मण लोयो होयो आपणा डोल प।
रूम रूम मै सेल टूट गया छ घोडी जी हाळा,
मीणा मार पीट भगाया छ र।

पर विजय श्री उनका वरण करती है। वे बछड़ा लेकर घर लौटते हैं। अब उन्हें अपनी आसन्न मृत्यु की घड़ियाँ पास आती दिखाई देती हैं। इसलिए अपने वचन के रक्षा हेतु सर्प के पास चल पड़ते हैं।

मोडळ भी उनके साथ हो लेती है और वे नियत स्थान पर पहुँच जाते हैं। उनकी घोड़ी उनके सकेत पर उनकी बहिन तथा मा को बुला लाती है। सर्प उन्हें काटना चाहता है पर उसके सामने समस्या है कि उन्हें किस अग पर काटे क्योंकि उनका प्रत्येक अग क्षत विक्षत हो रहा है। इसलिए तेजाजी अपनी जीभ निकाल देते है और सर्प उस पर काटता है—

काळो तो जीभ के सूम्यो छ र,
जाभी फ डस्यो छ जाटाँ को छावडो।

तथा घोडी को वह कान पर काटता है।

अत में मोडळ तेजाजी के शव साथ सती हो जाती है—

ऊभी भोडळ न बोर तेजाजी म,
दोन्यों न बराबर सत द्यो सारी भगवान।

वस्तुतत्त्व

तेजाजी के कथा विकास में जीवन की अनुरूपता है। इस वृत्तान्त कथा का विकास सरल व स्वाभाविक ढग से हुआ है। उसमें उन कला युक्तियों का अभाव सा है जो साहित्यिक कथाओं में कौतूहल उत्पन्न करने के लिए अपनाई जाती है। इसलिए घटनाओं का विकास ऐतिहासिक क्रम से है। केवल तेजाजी के विवाह के तथ्य का उद्घाटन कथा के मध्य में होना है जो इतिहास क्रम से पूर्व में होना है—नायक के बाल्यकाल का प्रसग है। कथा का आरम्भ नायक के यौवन काल से होता है। नायक नित्य प्रति की तरह एक दिन तालाब की

पाल पर पूजा मे बठा होता है, उस समय माना गूजरी उसे बताती है कि उसका विवाह हो चुका है। तब नायक पत्नी का लाने का निश्चय कर लेता है। बहिन को लेने जाने और माग मे लुटेरो से उसकी शक्ति परीक्षा प्रासगिक घटना के रूप म आती है। शेष घटनावली आधिकारिक कथा के अन्तगत है। उसकी घटना क्रम म जो आकषण है वह माग म उत्पन्न सहज बाधाओ के फलस्वरूप है। जब तेजाजी अपनी ससुराल जाने के आग्रह को नही छोडते तो उनकी भाभी के य वचन होते हैं—चाहे तुम चले जाओ पर जीवित लौटकर नहीं आओगे। ये वचन ही कथा म आद्यन्त कौतूहल बनाये रखते हैं और नाटकीय व्यग्य (Dramatic Irony) बन गये हैं। पाठक यह जानने को उत्सुक रहता है कि अतुलित बल धाम इस वीर की मृत्यु कैसे होगी। माग के अपशकुनो को अपनी शक्ति के बल पर अनुकूल बनात जात देखकर तो भाभी का कथन और भी अविश्वसनीय बन जाता है। पर शकुन की वस्तुएँ भी तो पुन पुन यही पुष्ट करती हैं कि तुम्हारी भाभी के वचन मिथ्या नही जायेंगे। अत पाठक विस्मय और कौतूहल से युक्त होकर कथा को पढता रहता है। उसी घटना विकास मे तेजाजी द्वारा सप को जलने स बचा लेना और उसको वचन देना जसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं और पाठक अन्त के सम्बन्ध मे निश्चय की स्थिति पर पहुँच जाता है पर घटना विकास के साथ उसम तनिक उलझाव उत्पन्न हुआ है। ससुराल म नायक का निरादर और माना गूजरी के अतिथि बन जाने के बाद गाया की चोरी और युद्ध म नायक का घायल होना—जसे प्रसग कथान्त की ओर सकेत करते हैं। पर कथा आगे बढी है। तेजाजी मृत्यु को समीप देखकर वचन निर्वाह हेतु चल पडते हैं। भाभी माँ बहिन व पत्नी की उपस्थिति मे सप दश क करुण दश्य के साथ गाथा की समाप्ति होती है।

इस लोक गाथा मे घटनावली निर्लोप काय कारण से आबद्ध और स्वाभाविक है। उसमे कहा त्रुटि नही है। अलौकिक तत्वो की स्वीकृति के उपरान्त भी उसका धरातल पार्थिव और तकसगत है। मध्य के शौय क प्रसग उसम नीरसता नही आने देत और अतिम प्रसग उसे इतना ममस्पर्शी बना देता है कि पाठक के मन पर वेदना की गहरी छाप पड जाती है।

गाथा मे लोक-तत्त्व

अनेक गाथाए एतिहासिक आधार पर स्थित होने पर भी सवथा ऐतिहासिक नहीं होती हैं। उनम लोक मानस ऐसे ऐसे लोक विश्वासो मान्यताओ रूढियों और गलियो को जोड देता है जो किसी साहित्यिक कृति म प्राय स्थान नहीं पाती हैं, जिनका बौद्धिक या तकपूण समाधान नहीं खोजा जा सकता है तथा जिन्हें आधुनिक सभ्य मनुष्य निरथक होन क नात अग्राह्य समझता है। यद्यपि

जा सकता। तेजाजी की मृत्यु इसका प्रमाण है।

स्थूल भौतिक कार्यों की सिद्धि के लिए सूक्ष्म कारणो की स्वीकृति लोक मानस की महत्त्वपूर्ण स्वीकृति है। इसस इस बात की सिद्धि होती है कि उसके लिए जगत मे जड चेतन का भेद नही है। स्थूल कारण से स्थूल काय की सपन्नता या सूक्ष्म कारण से सूक्ष्म काय की सम्पन्नता उसकी मान्यता को सीमित नही रख पाती। इस गाथा म मडार पर लगे ताल केवल गूगल और धूप के जलाने से भड पडते हैं—

खेई छ गूगल धूपाँ घोडीजी हाळा
जुड या ताळा होट ग्या।

इस गाथा मे जादू टोनो को भी स्वीकृति मिली है। मनुष्य की भय वृत्ति ने इनके उदय म योग दिया है। लोक जीवन म ऐसे अनेक भय व्याप्त है, जो काल्पनिक होते हैं। भूत प्रत डाकिन चुडैल आदि भय के काल्पनिक आधार हैं। तेजाजी ऐस भय से मुक्त नही है अत व अपनी घोडी से कहते हैं—

धीरी मदरी चाल न घोडी म्हारी,
डाकण तो खा जावगी जूना सग्रर में।

डाकिन, शाकिन आदि की तान्त्रिक कल्पना लोक मानस मे पहुचकर इस रूप मे परिणत हो गई है। यहाँ तक कि शारीरिक कष्टो की कारण-स्वरूपा ऐसी अनिष्टकारिणी शक्तियो की कल्पना की जाने लगी। तेजाजी का शरीर क्षत विक्षत हो गया है और वे मरणासन्न है। उन्हे यह भय था कि सप को दिए वचन के निर्वाह के पूव ही उनकी मृत्यु न हो जाए इसलिए वह 'स्त्री की छोत' से बचना चाहते हैं—

दूरा सू ई बतळाव न र गूजर की माना,
छोत पड जावगी भाला म्हारा जीव प।

यह छोत (infection) स्थूल से सूक्ष्म हो गया है, क्योकि लोकमानस मे स्थूल और सूक्ष्म म कोई भेद नही होता है। इसलिए इसके सूक्ष्म इलाज भी किए गए हैं—

पाछो ई बावड चाल न र ज्वाई म्हारा,
जावतो कराऊगू थारा डील को।

शारीरिक व्याधि पर जावतो (जादू-टोना) कराने की व्यवस्था भोले मानस की स्वीकृति है। एसे किसी भी सकट के निवारण के लिए तायत (ताबीज) बाँधे रहना भी एक उपाय है—

गळा में तायत पडयो छ घणी म्हारा
पगा प खेल छ चोसठ जोगण्या।

म्हारो तो राम रुपाळो छ धणी म्हारा,
थारो रापजे गाढो जावतो ।

शाप को साहित्यिक दुनिया म स्थान मिला है। पर धीरे धीरे इस पर से नागरिक और शिक्षित मनुष्य का विश्वास समाप्त हो गया है, वह केवल लोक जीवन की सम्पत्ति रह गया है। शाप से व्यक्ति का अनिष्ट हो सकता है और आशीर्वाद से अभीष्ट सिद्ध हो सकता है लोकमानस इसे स्वीकार किये हुए है। तेजाजी गाथा मे पुन पुन इस पर बल दिया गया है कि 'थारी भाभी का बोल्या एळा न जाय । यह बोल्या' शब्द शाप के अर्थ म प्रयुक्त हुआ है। इस गाथा म वरदान का उल्लेख भी मिलता है।

लोक जीवन मे सतीत्व भावना इस विश्वास पर जीवित है कि जब स्त्री सती होने लगती है उससे पूर्व वह त्रिकालदर्शिनी देवी स्वरूपा हो जाती है और उसे वरदान या शाप देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसी विश्वास पर मोडळ सती होने के पूर्व सर्प को शाप देती है—

थन म्हू सरापूगी र काळा बाबा,
भेल म्हारा सराप ।

भविष्यवाणी म अगाध विश्वास लोकमानस की एक विशेषता रही है। भविष्यवाणियाँ प्राय किसी देव पुरुष या देवता के द्वारा की जाती है। ऐसी भविष्यवाणियाँ भागवत मानस आदि धर्मग्रन्थो म लोक तत्त्व की स्वीकृति के रूप म मिलती है। इस लोकगाथा मे काळा बाबा इस प्रकार कहता है—

कळ को परगास आग्यो छरी जाटा की छोरी
कळू में रूगू इ की लार—
म्हारो म्हारा काटया की लगो लहर समेद ।

स्वप्न मे किसी समस्या का समाधान या भावी की सूचना लोकमानस की एक अन्य मिलती जुलती स्वीकृति है। स्वप्न के सम्बन्ध मे आधुनिक मनोवैज्ञानिको की कुछ भी धारणा हो पर लोक साहित्य म उसका अपना महत्त्व है। कहीं उसके द्वारा प्रयसी के दर्शन होते हैं कहीं पर वह पहेली बनकर आता है, कहीं उसम किसी समस्या का समाधान रहता है कहीं उसके द्वारा भावी की सूचना मिलती है न जाने कितने विश्वास उसके साथ जुडे हुए हैं। तेजाजी की भाभी को उनके ससुराल प्रस्थान से पूर्व ही जो स्वप्न आता है उसम उनकी मृत्यु की पूर्व सूचना उसे मिल जाती है—

सूती छी सुख भर नींद देवरिया म्हारा
सूती का सपना में होगी थारो काकड-देवळो ।

अवतारवाद की स्वीकृति के उपरान्त लोकमानस तनिक आगे बढ गया। उसके अनुसार प्रत्यक्ष देवी देवता अवतार लेकर पृथ्वी पर आ सकता है। सम्य

और नागरिक जीवन में अवतारों की संख्या १० या २४ पर आकर रुक गई है, पर लोक में पहुँचकर उसकी निश्चित सीमा नहीं रही है। इसीलिए गाथा की भाभी और घोड़ी दोनों भवानी के अवतार हैं—

(१) थारी भाभी सगत भवानी छ घोड़ी जो हाळा।

(२) थू तो सगत छ रे घोड़ी म्हारी।

लोकमानस देशकाल के सापेक्ष ज्ञान से अपरिचित रहा है। वह अपनी मान्यता के पोषण के लिए तथ्य चयन के तर्क का सहारा नहीं लेता है। इसीलिए हिमालय स्थित बद्रीनारायण का मंदिर बनास नदी के आसपास ले आना उसके लिए अस्वाभाविक नहीं है। दिशा बोध उसके लिए बाधक नहीं है। गाथा में तो इतना ही पर्याप्त है कि नायक बद्रीनारायण के दर्शन कर ले।

लोक साहित्य पोथियों के स्थान पर जिह्वा पर पला है। इसलिए उसका विकास एक विशिष्ट शैली में हुआ है। आवृत्तियाँ उसकी शैली का एक आवश्यक अंग है और उनमें भी एक निश्चित शब्दावली मिलती है जो सभी समान प्रसंगों में प्रयुक्त होती है। उसके कुछ रूप ये हैं—

(१) ऊपर से नीचे उतरने के लिए—

खड खड पेड यां उतरयो

(२) प्रस्थान व गंतव्य पर पहुँचने के लिए—

एक मजल दूजी लागी

तीजी मजलयां में राई आगण।

(३) उद्बोधन के लिए—

सूती छ क जाग छ

और उत्तर के लिए—

न सूती, न जागू देवरिया म्हारा

डावरिया नणा में नदरा भर रही।

(४) वचन बद्धता के लिए—

वाचा ब्रम्म वाचा मीणाओ भाया

वाचा चूका तो ऊबाई सूरस्या।

---

1 There is a markeet preference for number two and three—two brothers one acting as a foil to the other three questions and talks the slaying of teree giants of which third is the most dangerous three daughters to the king out of which the third and the youngest is the prettiest

Stunberg—Cassell s Encyclopedia of Literature page 225

इस गाथा में 'तीन' शब्द के लिए विशेष आकर्षण है क्योंकि पहली व दूसरी मंजिल के बाद तीसरी मंजिल अंतिम होती है, एक दो हिलोर के बाद तीसरी हिलोर स्नान की समाप्ति की सूचना देती है—

एक हिलोळो दूजो लीनो
तीजा हलोळा में वार सड़ ग्यो।

गाथा की ऐतिहासिकता

वीर तेजाजी देव श्रेणी में कब पहुंच गये, यह कहना सरल नहीं है पर स्थान स्थान पर बनी उनकी देवलिया हाड़ौती लोक जीवन में उनके गहरे प्रवेश व देव *भावना की सूचना देती हैं। वीर तेजाजी से सम्बन्धित जो साहित्य उपलब्ध* होता है उसमें कुछ तो छोटी छोटी पुस्तकें हैं जो उनके जीवन पर किसी प्रकार का प्रकाश नहीं डालती पर कुछ पुस्तकें अवश्य विचारणीय हैं। किशनगढ़ से प्रकाशित श्री रामगोपाल शिवरामजी राव की लिखित तेज लीला है। इस पुस्तक का लेखक मुखपृष्ठ के पृष्ठभाग पर लिखता है यह पुस्तक प्राचीन *लिखावट महात्मा गोपीदास जी श्री कृष्णदास जी का वार्तालाप गद्य रूप सम्वत* १७३४ की लिखावट थी उसे मैंने पद्यरूप देकर आपके कर कमलों में प्रस्तुत की है। मूल पुस्तक सम्वत १७३४ की है और उसका आधार सवत १४५५ में लिखा गया है।[1] इन उल्लेखों से पुस्तक की प्रामाणिकता विचारणीय बन जाती है। इस 'लीला' से कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—तेजाजी खरनाल के निवासी *थे और धोलिया जाट थे। उनके पिता का नाम ताहड़ और माता का नाम* यशोदा था। तेजाजी का विवाह अति बाल्यकाल में रायमल की पुत्री प्रेमलता से हुआ था। जब तेजाजी पनेर में पहुंचे तब वहां उनकी सास द्वारा उनका अपमान हुआ। इस पर वे लौटने लगे तो लाधू गूजरी ने उन्हें प्रार्थनापूर्वक अपना अतिथि बना लिया। रायमल की पत्नी की प्रेरणा से लाधू गूजरी की गायें चोरी *चली गई और उन्हें लौटा ले आने के प्रयत्न में तेजाजी घायल हुए। अंत में* सर्प दंश से उनकी मृत्यु हुई।

उपर्युक्त अंश तेजलीला की कथा का उत्तरार्ध है। पूर्वार्ध में तेजाजी और प्रेमलता क्रमशः महाराज कश्यप नाग और नागदेवी के अवतार बताये गये हैं और ये अवतार तत्कालीन गो रक्षा आवश्यकता के हेतु हुए हैं। कश्यप और *उनकी पत्नी को अवतार लेने की प्रेरणा विष्णु भगवान और इन्द्र से मिली है।* इस प्रकार पूर्वार्द्ध अलौकिक घटनाओं से युक्त और अविश्वसनीय है। उत्तरार्द्ध का आधार जनश्रुति प्रतीत होती है जो हाड़ौती गाथा में भी मिलती है।

---

1 रामगोपाल शिवरामजी—तेजलीला पृष्ठ ५

तेजलीला' के लेखक के अनुसार तेजाजी की जन्मतिथि सवत १३३० भाद्रपद दशमी रविवार है और इनका प्रथम विवाह सवत १३३३ ज्येष्ठ एकादशी को हुआ था। इनके पाँच विवाह हुए पर सब पत्नियाँ मृत्यु को प्राप्त होती चली गइ। 'लीला के अनुसार तेजाजी का स्वगवास सवत १३५० चत्र शुक्ला पचमी को हुआ।

ठाकुर देशराज ने 'मारवाड का जाट इतिहास लिखा है जिसमे तेजाजी के जीवन चरित पर तीन स्थलो पर विचार किया गया है। एक स्थल पर धौल्या गोत के भाट छाटूजी के आधार पर तजाजी का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया गया है—

तेजाजी का जन्म सवत ११३० माघ शुक्ला चतुर्दशी बहस्पतिवार को हुआ। उनके पिता का नाम ताहड था और पनेर के राव रायमल की पुत्री पेमल इनकी पत्नी थी। पेमल गौरी इनकी अतिम पत्नी थी। इससे पूव इनके पाँच विवाह हो चुके थे। इनकी माँ का नाम राजकुवर था। छोटूजी भी सुरसुरा गाँव ही इनकी शहीदी का स्थान बताते हैं। सवत ११६० वि० की माघकृष्णा चतुर्थी को उनका बलिदान हुआ था। यह छोटूजी की बही का कथन है किन्तु सव साधारण के अनुसार शुक्ल दशमी उनके बलिदान की तिथि है।[1] अन्य दो स्थलों के उल्लेख तेजाजी के जीवन पर विशेष प्रकाश नही डालते हैं।

उपयुक्त दोनो आधार विश्वसनीय प्रतीत नही होते हैं। दोनो के आधार जनश्रुतियाँ प्रतीत होती हैं। छाटूजी की बही भी प्रामाणिक आधार प्रतीत नही होती है। तिथिया का योग देकर दोनों म प्रामाणिकता लाने के प्रयत्न मिलते हैं। इसीलिए दोनो मे तिथि अतर काफी है। तेजाजी के छह विवाहो से सम्बन्धित व्यक्तियो व कन्याओ के नाम भी परस्पर मेल नही खाते है। पर दोनो की छान बीन करने पर कुछ विश्वसनीय तथ्य भी प्रकाश म आते हैं—तेजाजी धौल्या गोत्र क थे, उनके पिता का नाम ताहर या ताहड था। उनमे गो प्रेम भरा हुआ था। लाखा या लाछू गूजरी की गायो की रक्षा करते हुए वे घायल हुए और सपदश से उनकी मृत्यु हुई। उपयुक्त तथ्यों को मारवाड का जाट इतिहास का लेखक भी प्रामाणिक मानता है।[2] वह यह स्वीकार करता है कि तेजाजी की जन्म तिथि 'ग्यारहवी सदी के आरम मे भादों सुदी १०वी है।

तेजाजी की मृत्यु का कारण—सपदश (?)

हाडौती लोकगाथा और लीला दोनों म तेजाजी की मत्यु सपदश से

---

१ ठाकुर देशराज—मारवाड का जाट इतिहास प १५१ से १५३

२ वही पृ २१५ स २१६

स्वीकार की गई है और यह दश भी उनकी जीभ पर बताया गया है। क्या यह समव है ?

पुराणो और लोकगाथाओं मे ऐतिहासिक तथ्यो को जिस रूप मे स्वीकार किया जाता है उससे वे वास्तविकता से बहुत दूर चले जाते हैं पर सामा य पाठक उ हे यथावत स्वीकार करते रहते हैं। जनमेजय ने जो नागयज्ञ किया था वह सर्पों का यज्ञ स्वीकार किया गया है। वस्तुत यह यज्ञ तो जनमेजय द्वारा बवर नाग जाति का सहार था जो जहाजपुर (यज्ञपुर) म हुआ था। नाग शब्द से यह भ्रान्ति उसी प्रकार हो गई जिस प्रकार वानर' शब्द की श्लिष्टता ने रामवाहिनी के मनुष्यो को बदर बना दिया।

वतमान जहाजपुर के आसपास की भूमि पर नाग जाति प्राचीनकाल से रहती आई है। नागौर[1] इस जाति का केन्द्र है, जो मारवाड म है। ठाकुर देशराज ने मारवाड के नागवंशी जाटो की गोत्र तालिका दी है। उसके अनुसार धौल्या श्वेत्रा (श्वेत) नागो म से है। मारवाड मे श्वेत या सफद को धोल्या कहते हैं। महावीर तेजा इन्ही (श्वेत) धौल्या नागो म पदा हुए थे।[2] असित नागो मे काला जाट है जो परवतसर परगने म आबाद है। असित का अथ है जो सफेद नही अर्थात् काला होता है।[3] इस प्रकार जाटो की नागवशीय शाखा के धौल्या और काल्या के गोत्र प्रचलित हैं। यह काला नाग गोत्र ही शब्द—श्लेष स काला सप समझा जाने लगा।

इसी काला नाग गोत्र का एक व्यक्ति बालू था जिससे तेजाजी का झगडा हुआ था।[4] यह बालू नाग सुरसुरा के जगल मे तेजाजी को मिला।[5] छोटूजी जाट के अनुसार गायो की रक्षा करते हुए सुरसुरा गाँव मे तेजाजी की शहीदी हुई।[6] इन उल्लेखो से यह स्पष्ट हो जाता है कि तेजाजी बाल नाग द्वारा मारे गये पर इसे इतिहासकार स्पष्ट रूप म स्वीकार नहीं करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि लोकगाथा म नायक के मत्यु कथांश को ऐसा स्वरूप

---

१ सस्कृत लेखो में इसको अहिच्छत्रपुर या नागपुर लिखा है। नागपुर का अथ नागो (नाग वशियो) का नगर है और अहिच्छत्रपुर का अथ है अहि (नाग) है+छत्र (रक्षा करने वाला) जिस नगर का। अतएव यह नगर प्राचीन काल म नागवशियो का बसाया हुआ था या उनकी राजधानी होनी चाहिए। ओझा गौरीशकर हीराचन्द—राजपूताने का इतिहास जोधपुर राज्य का इतिहास प ४०

२ ठाकुर देशराज—मारवाड का जाट इतिहास पृ ६६ ७०

३ ठाकुर देशराज—मारवाड का जाट इतिहास प ४८

४ वही प० १४२

५ वही प० १४५

६ वही प १२१

कैसे प्राप्त हुआ ? मैक्समूलर के अनुसार धर्मगाथा भाषा का रोग (मैलडी आफ लग्वेज) है। भाषा जब अपनी श्लेष शक्ति अथवा असमर्थता के कारण एक के स्थान पर, साम्य या भ्रांति के कारण, दूसरे शब्द को ग्रहण कर लेती है और अर्थविषयक परिवर्तन भी पैदा कर देती है तब धर्मगाथा जन्म लेती है।[1] ऐसी धर्मगाथा ही बाद में लोकगाथा में रूपांतरित हो जाती है। तेजाजी लोक गाथा की सर्पदंश सम्बन्धित नामावली में इस सिद्धान्त को देखा जा सकता है। उसमें नाग के लिए 'काला बाबा' और 'बासक राजा' और उसके निवास के लिए 'भूरी बामल्या' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'काला बाबा' शब्द में 'काला' गोत्र वाचक है।

गोत्र कथन में प्रायः पूर्ण शब्द के स्थान पर सुभीते की दृष्टि से उसके अंश से ही काम लिया जाता है, जैसे गुवाल व बाणारसा क्रमशः गुवाल आचार्य व बाणारसा तिवाडी के लिए प्रयुक्त होते हैं। बाबा शब्द या तो सम्मान सूचकता में प्रयुक्त हुआ है (लोक मानस में यह वृद्ध का भी द्योतक है) या 'बालू' शब्द ही स्वरूप बदलकर बाबा रूप में भ्रमवश प्रयुक्त हो रहा है। 'बासक राजा' शब्द में भी 'बासक' शब्द 'वासुकि' से बना है। मारवाड़ के नाग वासुकि वंश के हैं।[2] राजा शब्द नेतृत्व या स्वामित्व के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हो सकता है कि तेजाजी का प्रतिद्वन्द्वी अपने गांव का स्वामी होने से वासुकि राजा कहलाता हो। भूरी बामल्यां में 'बामल्या' शब्द वाल्मीकि से बना है जो 'नाग' से सर्प का अर्थ ग्रहण किये जाने पर वासुकि राजा के निवास को बांबी रूप में ग्रहण करने की स्वाभाविक भूल है। 'भूरी' विशेषण मारवाड़ की रेतीली भूमि की ओर संकेत करता है।

अब सर्पदंश की बात विचारणीय है। लोकमानस की इस कल्पना में लोकभाषा ने योग दिया है। यदि अपने प्रिय व्यक्ति का किसी के द्वारा वध कर दिया जाये तो उनके लिए सम्बन्धियों की सीधी सादी पर मार्मिक अभिव्यक्ति होती है—'खा गया'।[3] तेजाजी अपनी गो सेवा और गो रक्षा के कारण अत्यन्त लोकप्रिय बन गये थे। अतः जब बालू नाग द्वारा उनका वध किया गया तब लोक जिह्वा पर यह प्रचलित रहा होगा कि तेजाजी को बालू नाग खा गया।

प्रस्तुत लोकगाथा में पुनः पुनः स्थापना की गई है कि तेजाजी वचन निर्वाह

---

१ डॉ॰ सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ ४१

२ ठाकुर देशराज—मारवाड़ का इतिहास पृ १६२

३ यह अभिव्यक्ति शैली मनुष्य की उस बर्बर अवस्था का स्मरण दिलाती है जब मनुष्य किसी के वध के लिए दाँतों और नखों का उपयोग करता था। इसमें नृशंसता बोधक बिम्ब एवं प्राचीनता है।

का यही आदर्श पालन करते थे जो 'मानस' के 'प्रान जाहि पर वचन न जाई' में मिलता है। लोकमानस में अभेदवाद की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिसके अनुसार तुल्य और तुलनीय, अंग और अंगी, चिह्न और प्रतीक और प्रमाता अथवा लक्ष्य में अभेद होता है। उसके लिए भावांग भी मूल-स्वरूप वाले होते हैं।[1] इस प्रकार वचन जिह्वा के रूप में स्वीकृत हुए। तेजाजी अपनी वचन-बद्धता के कारण मारे गये हैं। लोक मानस के पास ऐसी शब्दावली तैयार थी जो उनके प्रति द्वन्द्वी को सर्प की सजा देने में सक्षम थी। इसलिए ऐसे लोक मन ने झट से जीभ पर काट लेने की बात गढ़ ली और तेजाजी की लोकप्रियता के साथ यह कल्पना भी लोक में यथार्थ रूप में स्वीकार हो गई। तेजाजी को लोक देवता मान लेने पर तो इस स्वीकृति को और भी बल मिल गया। यही कारण है कि तेजाजी की अति प्राचीन मूर्तियों में उन्हें जिह्वा पर सर्प द्वारा कटवाते नहीं दिखाया गया है।

चरित्र चित्रण

तेजाजी में चरित्र पर प्रकाश प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रणालियों से पड़ा है पर अधिकांश में कथोपकथन द्वारा ही चरित्र सामने आये हैं। इस गाथा के प्रमुख पात्र तेजाजी ही हैं शेष पात्र माता गूजरी मोडल मामी तुलछा राधा व घोडी गौण हैं, तेजाजी का चरित्र चित्रण अत्यधिक कलात्मक हुआ, इससे यह पात्र श्रोता के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ जाता है।

तेजाजी

गाथा के नायक तेजाजी जाट जाति के एक वीर पुरुष हैं, कठिनाइयों में स्वपथ निर्माण करने का अदम्य उत्साह उनमें भरा पड़ा है इसीलिए वे अपशकुनों की चिन्ता नहीं करते अपितु उन्हें शक्ति के बल पर अनुकूल बनाते चलते हैं

सूण मनातो जाव छे रे घोडी जी हाळा
जारयो छ वन में एकलो

यही वीरता भयकर युद्ध में भी दिखाई देती है माता गूजरी का बछड़ा लाने के लिए वे वीर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं, वचनों का निर्वाह वे किसी भी समय करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं अत मृत्यु को सामने खड़ा देखकर अपनी चिकित्सा की चिंता उन्हें नहीं होती, अपितु चिंता होती है

लख्या लेख गोडा मारया छ री गूजर की माता
बाबा चुकगा काळा की भूरी बामल्यां।

---

1 डा॰ सत्येन्द्र—मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन पृ॰२६ २८

वीरता के साथ दया और सहानुभूति उनके चरित्र म मणि-काचन का सयोग है। इन्ही मानवीय उदार गुणो स प्रेरित होकर वे जलत हुए वन को बुझाने लग जाते हैं और जलत हुए सप को बचा लेत हैं। गौ रक्षा की भावना भी उनमे विद्यमान है

सूधी धूदाडा चाल न रो घोडी म्हारी
चारो बळ रयो छ गऊ गरास को।

तेजाजी परम भगवद्भक्त रूप म भी सामने आते हैं। उ ह नित्यप्रति भगवान की सेवा साधन की लगन बाल्यकाल से ही है। इसी का प्रभाव है कि उनके सामने झूठ छिप नही सकती

झूट घणो मत बोल है गूजर की माता,
जुडया छ कर्वांड बालू थारो खेल रयो।

इसी धार्मिकता का प्रतिफलन उनकी चारित्रिक पवित्रता मे होता है। अपनी बहिन के ससुराल मे पहुँचने पर पनघट पर 'भरया माट उचाया सू ज्याग बता दू' का प्रस्ताव जब एक पनिहारिन की ओर से होता है तब तेजाजी कह देते हैं

ज्यूई भरिया, ज्यूई उच ल, फणियारी माता
पला की तरिया न मेलू कळस्यो बेवडो।

उन्ह सामाजिक पारिवारिक मर्यादाएँ अत्यधिक प्रिय हैं। किसी व्यक्तिगत भावावेग म वे कोई ऐसा काय नही करना चाहत जो पारिवारिक शाति को भग कर। अपनी बहिन से यह पूछकर कि तू लाखीणा सगा' से पूछकर आई है न इसका परिचय देत हैं। दूसरा की भावनाओ का आदर करना और पारिवारिक रीति रिवाजों का निर्वाह भी उन्हें प्रिय है अत बहिन के यहाँ एक बार भोजन करने पर भूरी और धोलची भैंसें दे देते है

खासा म तो भूरी दीनी छ
बण के लाँई दीनी छ धरमा धोलची।

वे माता और भाभी की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। इसलिए उनके सकेत पर ससुराल जाने के पूव बहिन को लने चले जाते हैं। यहीं वे व्यवहार कुशल और आत्म प्रतिष्ठा प्रिय रूप म भी सामने आते हैं। अत व माग बल अपनी गाडी म नही जोतत

माँग्या ढोल्या न जोऊ भोजाई म्हारी।

और न ससुराल का अनादरपूर्ण आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

घोडी के प्रति उनके हृदय में इतना ही प्रेम है जितना किसी पुरुष म अपनी प्रिय पुत्री के प्रति होता है। उसका तनिक भी दुख वे नही देख सकते। जब मालिन घोडी को पीट देती है तब वे भी उसे दडित करते है—

डाळ तो कदेर की तोड़ी छो रे घोड़ी जी हाळा।
माळी की छोरी के सांट्यां मांडदया।

सक्षेप म हम यह सकते हैं कि तेजाजी का चरित्र मानवीय गुणा का कोष है। इनके चरित्र म जाति और व्यक्ति दोनो का समन्वय है। इनका निष्कलुष चरित्र ही गाथा को लोगो का कठहार बनाये हुए हैं।

भोडळ

मदना जाट की पुत्री मोडळ गाथा की नायिका है। बाल्यकालीन विवाह जन्य विस्मृति उसम भी विद्यमान है। उसम भारतीय नारी के प्राण मूर्तिमान हैं। तेजाजी जब बछडे को लेने के लिए जाने लगते हैं तब वह भी जाने का आग्रह इस आधार पर करती है

आडे ढाल वण जाऊंगी रे खावद म्हारा।
भळका झेलूगी दांत की चूप क माँईन।

और इसी रूप की चरम सीमा वहाँ देखने को मिलती है जब वह परमात्मा से सतीत्व माँग रही है

भोडळ तो बामी प बैठी छ रे घोड़ी जी हाळा
सत माँग री छ सरी भगवान सू।

मोडळ का प्रेम आध्यात्मिक है। उसमे वासना की तनिक भी गध नही है।

माना गूजरी

माना गूजरी के रूप मे सामान्य नारी का चरित्र चित्रित हुआ है। मिथ्या भाषण, व्यग्य, स्वाथ परायणता और बुद्धि-हीनता उसके चरित्र की विशेषताए हैं। इस चरित्र की उपस्थिति से मोडळ का चरित्र काफी उभर आया है। उसकी स्वाथ-परायणता की चरमता तब देखने को मिलती है जब बछडे को लाने के लिए तेजाजी को इन शब्दो मे प्रोत्तजित करती है—

न लायो गायाँ को रखेल
गायाँ तो राँडा होगी छ रे जीजाजी म्हारा,
रेग्यो गायाँ को मोड।

फिर भी अपनी सहेली की दारुण व्यथा को समझने का स्त्री-सुलभ हृदय उसे प्राप्त है। अत मोडळ की प्राथना पर वह तेजाजी को रख लेती है और आतिथ्य का निर्वाह करती है।

भाभी व मा

भामी का चरित्र अत्यल्प सामने आता है। तजाजी क परिवार म उसका

महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी स्वीकृति से तेजाजी राधा को लेने जाते हैं। उसमें विवेक विद्यमान है। अत दुस्वप्न देखने पर तेजाजी को मना कर देती है। जब तेजाजी नहीं मानते हैं तो वह उन्हें कोसती भी है। भाभी के सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित पात्रों का यह विश्वास है—

भाभी सगत भवानी छ घोडी जी हाळा
भाभी का बोल्या वचन एळा न जाव।

तुलछा तेजाजी की माँ है। उसमें मातृत्व मूर्तिमान है। इसलिए पुत्र और पुत्री दोनों का मंगल चाहती है।

घोडी

यद्यपि घोडी पशु पात्र है फिर भी उसमें मानवोचित गुण विद्यमान है वह बोलती सोचती तथा समझती है। उसमें अपने स्वामी के प्रति अत्यधिक प्रेम विद्यमान है। अत जब तेजाजी विषधर से वचन बद्ध हो जाते हैं तब वह कहती है

ढीली द र लगाम घोडी जी हाळा।
ठोकर सू फोडू काळा को काळज्यो॥

वह सामान्य घोडी नहीं है अपितु अलौकिक शक्ति से युक्त है। इसीलिए अग्नि को बुझाते समय तेजाजी जिस जलते शुष्क काष्ठ से उसे बाँधकर जाते हैं, वह हरा हो जाता है

बळता के बांधी छी हरया होग्या लखडा।

इसीलिए वह तेजाजी के बिना कहे ही जान लेती है

बाचा दमायो छ काळा की भूरी बामल्यां।
थारो सारो कोई न छ र म्हारा धणी,
थारी भाभी का बोल्या वचन न टळ।

और तेजाजी की मृत्यु के समय उनके सकेत पर बहिन तथा माता को बुला लेती है।

राधा में बहिन का प्रेम दिखाई देता है। वह ससुराल में तनिक परेशान है। तेजाजी की सास दुष्ट प्रकृति की स्त्री है जो अपने दामाद तक का स्वागत नहीं करती और अपनी पुत्री से दूसरे व्यक्ति को पति रूप में अपना लेने के लिए कहती है।

परिवार-समाज-चित्रण

तेजाजी में अनेक पारिवारिक और सामाजिक आदर्श भरे पड़े हैं। इस गाथा में माता पुत्र, माता पुत्री, पति पत्नी, भाई बहिन, देवर भाभी, भाभी

ननद सास-बहू, भाई बहिन आदि के पारस्परिक सम्बन्धों के इतने सुन्दर आदर्श भरे पड़े हैं कि हाड़ौती क्षेत्र में रामचरितमानस के पश्चात यह लोकगाथा ही अशिक्षित वर्ग का पथ प्रदर्शन करती रही है। इन सम्बन्धों की रक्षा केवल आडम्बरपूर्ण शिष्टाचार से नहीं अपितु सौहार्द-पूर्ण बंधन से हो रही है। प्रेम का सूत्र इन्हें ग्रथित किये हुए है। मर्यादा का ध्यान प्रत्येक दशा में रखने का सफल प्रयास इस काव्य में मिलता है। तेजाजी राधा को लेने उसकी ससुराल पहुंचे। बहिन सास द्वारा दी गई यातनाओं तथा गृह कार्य भार को सुनाने व रोने लगी

मण पीसूं छूं मण पोऊं छूं बीराजी म्हारा,
फर का तड़का को लवूं छूं गद बलोवणी।

तो तेजाजी युक्ति से समझाते हैं

भला थारो भाग खुल्यो छ।
थूका करमां मैं लखग्या छ गद बलोवणा।

भारतीय परिवार में सास बहू ननद भौजाई के सम्बन्ध प्रायः कटुतापूर्ण पाये जाते हैं। इनमें पारस्परिक कलह द्वन्द्व प्रायः चलता रहता है। तेजाजी अपनी बहिन से पूछते हैं

नणदोळी थारो काई मांग छी री म्हारी ब नड़।
काई लेखा सूं ऊन मूंडी मोड ल्यी।

और अंत में तेजाजी के निर्देशों का निर्वाह करने का परिणाम यह होता है

नणद भोजाया मल री छ धोडी जी हाळा।
मल री छ भाभी का मैं'ल मैं।

तेजाजी में अत्यन्त निकट सम्बन्धों में तो स्नेह छलकता दिखाई दे रहा है। पति पत्नी के पुनीत प्रेम का अंत मोडळ के सतीत्व में होता है। माता के प्रति पुत्र व पुत्री की आज्ञाकारिता, भाभी के प्रति देवर की श्रद्धा व भाई के प्रति बहिन का प्रेम अपने आदर्श रूप में चित्रित हुआ है। बहुत दिनों के पश्चात बहिन भाई से मिलती है। जब भाई आया तो मिलनोत्कंठा में वह छत पर से कूद पड़ती है और मार्मिक शब्दों में अपना प्रेम व्यक्त करती है

बीरो ढोल्यायो माणक चौक में।
थासूई छटक पड़ी छ राधा बानड़
आगो छ माणक चौक में
दौड़ तो मलो छ राधा बानड़—
घणां ई दना में आयो छ र बीरा जी म्हारा
थारा लेखां सूं बानड़ मरगी सासर।"

इन सम्बन्धों की परीक्षा संकट के समय होती है। तब वे अपने निष्कलुष व

स्वार्थ रहित रूप से प्रकट हो जाते हैं। तेजाजी की मृत्यु के पश्चात माडळ सती हो जाती है और राधा तथा माता अश्रु मे डूब जाती है।

तेजाजी मे शिष्टाचारों का सुंदर निर्वाह मिलता है। बडो के प्रति ढोक समवयस्कों से आलिंगन मिलन तथा छोटों के प्रति आशीर्वाद व्यक्त करने के अनेक स्थल गाथा म हैं। हाड़ौती क्षेत्र म परदे की प्रथा का परिपालन कठोरता से होता है और स्त्रियो का मुख यदि भूल से भी किसी ऐसे सम्बन्धी द्वारा देख लिया जावे, जो न देखने योग्य है तो उन्हें अपने ऊपर अत्यधिक झुंझलाहट आती है। राधा की सास सूत कात रही थी कि तेजाजी अकस्मात वहाँ पहुँच गये तब सास के शब्द देखिये

बालू जालू थारी ताण्या राट्या र माया।
म्हारा लाखीणा सगाजी न माथ मोडी देख ली।

और ठीक इससे पूर्व ही तेजाजी का शिष्टाचार देखिये

स्याण्यां जार जुवारी छ घोडी जी हाळा
ज्वारी छ राटयो कातती।
'झल म्हाका राम रमोल स्याण म्हारी,
म्हारी माता का झलजे पगल्या लागणा।'

वस्तुत तेजाजी' पारिवारिक आदर्शों से भरी एक सुंदर गाथा है। जिसम तेजाजी की सास का व्यवहार खटकता हुआ कांटा है। वह मानस' की ककेयी है। उसम किसी ऊंचे मानवीय गुण के स्थान पर नीच प्रवृत्तियों को ही पोषण मिला है। तेजाजी के बारह वर्ष पश्चात आने पर भी उसके वचन होते हैं

अस्या तो जवाई मोकळा आव छ री गूजरा की छोरो।
नतकई आव छ प्यारा पावणा।

और अपनी पुत्री के सती होने के निश्चय पर उसे परामर्श देती है

'यूं काई बावळी होगी छ है बेटी म्हारी,
तेजल सरीखा जाटा का छोरा मोकळा।"

पर इस पात्र की नीचता का परिणाम तो तेजाजी की मृत्यु रही है इस पात्र की उपस्थिति से परिवार अवास्तविकता के आरोप से बच गया है।

इस गाथा का समाज का ढांचा भी स्पृहणीय है। उसका आधार उदात्त मानवीय गुण—सत्य अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य आदि हैं। जहां-कहीं इन गुणो का अभाव मिलता है वहीं इसकी प्रतिष्ठा का प्रयत्न इस गाथा से किया गया है। सत्य की प्रतिष्ठा का प्रयत्न इन पंक्तियो म है

झूट धणी मत बोल र गूजरी की माता
जुड्या छ बराड बाळू थारो खेल रयो।

अहिंसा-वृत्ति का प्रसार प्राणि मात्र तक है। गो रक्षा की भावना से जलते वन

को बुझाते समय सर्प तक की रक्षा करके इस भाव की प्रतिष्ठा की गई है। यहाँ तक कि जब सर्प दंशन करने के लिए कहता है और घोड़ी कुपित होकर उसे मारने का निश्चय प्रकट करती है तब तेजाजी द्वारा अहिंसा की प्रतिष्ठा इन शब्दों में मिलती है

"होंदू धरम सवावा छा घोड़ी री म्हारी।
दूध लाज छ लछमा माई को।"

लुटेरों को दंडित करके चोरी न करने की प्रतिष्ठा की गई है। दो चार ऐसे स्थल आए हैं जहाँ चोरी के प्रति सहज घृणा उत्पन्न करने के प्रयास मिलते हैं।

ब्रह्मचर्य के परिपालन का आदर्श तेजाजी के चरित्र में विद्यमान है। आरंभ में भगवन्भक्ति की ओर प्रवृत्ति इस वृत्ति की ही प्रक्रिया है। पनिहारिन के सिर पर घड़ा रखने के ढंग में ब्रह्मचर्य के आदर्श का निर्वाह दिखाई पड़ता है।

"ज्यूई भरिया ज्यू ही उच ल पणियारी भाया,
पला की तरिया प न मलू कळस्यो बेवड़ो।'

'तेजाजी' में विशाल समाज चित्रण के लिए अवकाश नहीं था। इसलिए समाज का संकुचित रूप जिसमें कुछ हो जातियाँ जाट, गूजर मीना तथा कीर जाति हैं सामने आ पाया है। इन जातियों के माध्यम से समाज का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है उससे हमारे भारतीय समाज को दिशा निर्देश करने की अदभुत क्षमता है। जो उक्त वर्ग में बुराइयाँ हैं उनका प्रक्षालन कर दिया गया है और उनके स्थान पर मर्यादायुक्त समाज की प्रतिष्ठा की गई है।

अन्य काव्यगत विशेषताएँ

तेजाजी का प्रधान रस वीर है। अन्त में करुण रस भी मिलता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है जो नायक तेजाजी में व्याप्त है। उनके अदम्य उत्साह के समक्ष प्रकृति की बाधाएँ दूर हो जाती हैं और शत्रु परास्त होते हैं। उत्साह निजी स्वार्थ भावना से प्रेरित न होकर सर्वभूत हित कामना मय होने से उज्ज्वलतम रूप से सामने आता है। इससे प्रेरित तेजाजी को कभी लुटेरों का मान मर्दन करते देखते हैं कभी गोरक्षार्थ वन की रक्षा में तत्पर पाते हैं और कभी आर्त व्यक्ति के कष्ट का निवारण करने के लिए जूझते दिखाई देते हैं। वन में जलती हुई घास को देखकर तेजाजी अति उमंग में अग्नि को बुझाते दिखाई देते हैं

डाळ छूरा की तोडी छ घोड़ी जी हाळा,
झरो तोड यो छ कड़वा नीम को।
सळ लळ लाया बुझाव छ र घोड़ी जी हाळा
सापां बुझाव छ, बाडो बरड में।

दयावीरता के भी उदाहरण 'तेजाजी' मे हैं

> आंख्या सू दीख्यायो बालक देवता
> सेला स सरप उलाठ छ र घोडी जी हाळा
> ढाला प झेलग्यो बालक देवतो।
> डपटा सू फटकारयो छ।
> फूच्यो, पपोल्यो छ, हिवड लगाल्यो।
> × × ×
> आधो दूध बालक क ताई पा दयो।

युद्ध वीरता के उदाहरण लुटेरा से किय गए युद्ध क समय मिलते हैं।

करण रस क लिए इससे मार्मिक घटना कम मिलेगी कि तेजाजी अपनी पत्नी, माता व बहिन की उपस्थिति मे सप से अपनी जीभ कटवा रहे हैं। उस समय इस गाथा का लोक कवि चाहता तो भावो के प्रवाह स श्रोता या पाठक को बहुत दूर तक तथा बहुत देर तक बहाता ले जाता पर उसने थोड़े ही शब्दा म माता और बहिन की व्यथा को इस प्रकार व्यक्त कर दिया

> म्हसू तो बरी करी छ र काळा र बाबा,
> छोटी सी उमर मे वीरो म्हारो छळ लियो।
> × × ×
> माता थारी ढळ ढळ रोवे छ र घोडी जी हाळा,
> रो री छ काळा की भूरी बामल्या।
> थन म्हसू बरी करी छ र म्हारा लाल।
> छोटी सी उमर मैं म्हन छोड चाल्यो।

और मोडल का शव के साथ सती होने का प्रसग तो करुणतर है ही।

इस गाथा म बहुत कम अलकार मिलते हैं। उपमा तथा उत्प्रेक्षा इसके दो प्रमुख अलकार हैं। उत्प्रेक्षा का उदाहरण दखिय

> जळ मैं डाक पड यो छ,
> तर छ जाण ऊडा दह की माछळी।

एक अय स्थल पर घोडी क लिए कितना सुदर उपमान लाया गया है।

> घोडी नाच री छ सावण आया मोरडी।

अनेक स्थलों पर भाषा की अनुरणनात्मकता सुदर बन पडी है।

> १ झळ झळ भाला झळक छ
> २ खरळ-खरळ खाळया बोल छ
> ३ खड खड पेड या उतरयो छ।

गाथा म कथोपकथनो का प्राचुर्य है। गाथा के कथोपकथन घटना और चरित्र का विकास करते हैं। कथोपकथन छोटे हैं। प्राय दो पक्तियो म समाप्त हो जाते

हैं। गाथा के कथोपकथन की प्रश्नोत्तर शैली से वस्तु की रोचकता बनी रहती है। कथोपकथन में पात्रानुकूलता और स्वाभाविकता मिलती है। इसी कथोपकथन शैली में ही आरम्भिक गणेश वंदना इस प्रकार की गई है

'कांइ तो माता करगो गणेस्यो,
कांई करगी देवी सारदा।"
रद सद करगा गणेस देव लाल म्हारा
भूल्या न सभलावगी देवी सारदा।

कथोपकथन के बीच-बीच में थोड़े से विवरण मिलते हैं जो सरस तो हैं पर पुनरावृत्तियों से युक्त हैं। लोकगाथाएँ स्मृति पटल पर ही आश्रित रहती हैं अतः ऐसी पुनरावृत्तियों को दोष रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता।

हाड़ौती के देवी-देवता और उनका साहित्य

किसी क्षेत्र के लोक धम का अध्ययन उसके लोक मानस का भी अध्ययन होता है। लोक मानस की मूल प्रवृत्तियो म से दो प्रमुख हैं। वे हैं—आश्चय और भय। आश्चय ने जिज्ञासा और ज्ञान को ज म दिया है और भय ने मानव व्यव हारो को नियन्त्रित किया है। भय की आदिम प्रवत्ति ने प्रकृति के अनबूझ रहस्यो म देवी देवताओ के अस्तित्व को स्वीकृति दिलाई है। प्रकृति की जिस शक्ति पर मनुष्य का बस नही चला है वही वह देव रूप धारण कर गई है। पर मनुष्य की आश्चय की दूसरी प्रवत्ति उसके विश्वासो को जडता से निकालती रही है। अत धीरे धीरे भक्ति प्रेरणा भय से हटकर प्रेम तक पहुची है। जो शक्तिया प्राचीनो को सदव त्रस्त रखती थीं उनका स्थान कालान्तर मे शील शक्ति सौंदय समन्वित अवतारो ने ल लिया है। लोक मानस का विकास प्राचीन पर पराओ और मा यताओ को मिटाकर नही होता है अपितु उन पर नवीन स्वीकृतिया की परतें चढाकर होता है। अत जब हम क्षेत्र विशेष के धार्मिक विश्वासो का अध्ययन करत हैं तब हमे वहा काल क्रम से जमी धम की परतें अपने सहज रूप म मिल जाती है।

जब हम कोटा-बूदी क्षत्र के देवी देवताओ पर दष्टिपात करते है तब हमे यहाँ के लोक मानस के सभी धार्मिक विश्वासो के प्रतीक रूप देवी-देवता मिल जाते हैं। कही वे मदिरो म प्रतिष्ठित हैं तो कही उनके लिए चबूतरे बने हैं कही वे मढिया या छतरियो म स्थापित हैं तो कही व थानको मे पूजे जाते है। अनेक अवस्थाओ मे वे घर घर में स्थायी अस्थायी रूप म विद्यमान हैं। कुछ देवता तो ऐसे हैं जो प्रत्यक गाँव मे मिल जाते हैं जसे भरू जी आदि। एसे देवताओं की स्थापना के लिए किसी स्थापत्य शिल्प की आवश्यकता नही होती है पर जिन देवताओ की प्रतिष्ठा मदिरो या छतरियो म है वे ग्राम समूह म अकेले मिलते हैं। नगर जीवन की सम्पन्नता नागरिको की मा यता के अनुकूल देव भवनों का व्यय वहन करती रही है। अत इस क्षेत्र के कोटा बूदी नगरो मे प्राय सभी

देवताओं के मन्दिर मिल जाते हैं। फिर भी नगर विशेष या ग्राम विशेष के सभी देवताओं को समान प्रसिद्धि प्राप्त हुई नहीं है।

रामकृष्ण के अवतार हाड़ौती में अधिक पूज्य बने हैं। कृष्णोपासना को राज मान्यता प्राप्त होने से कोटा में मथुराधीश, ब्रजनाथ व रंगनाथ के मंदिर मिल जाते हैं। बूंदी में भी कृष्ण के अनेक मन्दिर हैं। इस क्षेत्र में शिव मंदिर भी अनेक हैं। कोटा के नीलकंठ, गपरनाथ के महादेव, चारचोमा के शिव और बूंदी के रामेश्वर आदि के मन्दिर शिव भक्तों के केन्द्र हैं। एक प्राचीन विशाल शिवलिंग भीमगढ में है। बनवास के कर्णेश्वर महादेव भी प्रसिद्ध हैं।

इस क्षेत्र में विष्णु के उपासक भी हैं। बूंदी के लक्ष्मीनाथ जी, केशोराय पाटन के केशोराय जी, नरगढ के लक्ष्मी नारायण जी और बूंदी के चार भुजा जी विष्णु उपासकों को अति प्राचीन काल से आकर्षित करते रहे हैं। ईश्वर की निराकार रूप में उपासना परंपरा में कोटा के सत्यनारायण को विशेष मान्यता प्राप्त है। घाटा में बद्रीनारायण का एक अति प्राचीन मन्दिर है।

वराह रूप में ईश्वरोपासना इस क्षेत्र में प्रचलित थी। वराह भगवान की मूर्ति कृष्णविलास स्थान पर मिलती है। गणेश व नृसिंह के मन्दिर भी इस क्षेत्र में मिलते हैं।

पुरा की पीताम्बरा रामगढ़ की किसनाई इंद्रगढ़ की बीजासणा, असनावर की रातादेई, कैथून की डाढदेई, जाखोडा की डरू माता आदि देवियाँ इस क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध है। रोग विशेष के साथ भी इन देवियों के नाम जुड़े हुए हैं जैसे शीतला खलखली और डेरू माताएँ। पार्वती पूजनरूप में गणगौर की पूजा इस क्षेत्र में अत्यन्त भक्तिभाव से की जाती है।

कुछ ऐतिहासिक वीर पुरुष भी इस क्षेत्र में लोक देवता रूप में पूजे जाते हैं। तेजा जी, देव नारायण जी हीरामन जी पाबू जी, तारा जी आदि ऐसे व्यक्ति थे जो अपनी त्याग तपस्या व वीरता के कारण पूज्य बने है। कुछ भक्त भी यहा देव रूप में पूजे जाते हैं वे हैं—पीपा जी रामदेव जी, कबीर दास जी आदि।

लोक देवता की परिधि मे त्यौहार विशेष पर पशु विशेष भी आ जाते हैं। दीपावली पर बल, दशहरे पर घोड़े नाग पचमी पर सर्प, वत्सद्वादशी पर बछड़े देव रूप मे पूजे जाते हैं। इसी प्रकार कुछ पौधा व वृक्षों की पूजा भी त्यौहार विशेष पर होती है वे हैं तुलसी बड़ पीपल आवली आदि। कुछ पर्वोत्सवों पर दवात कलम, चाक, घूरा आदि भी पूज्य बन जाते हैं। व्याधि विशेष पर तो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के देव को पूजते ही हैं पर सामान्य जीवन में भी हिन्दू गागरौन के मिट्ठे साहब को सीरनी चढ़ाते है और मुसलमान शीतला को नारियल भेंट करते हैं और छावनी रामचन्द्रपुरा के मातीसर जी को मशक चढ़ाते हैं।

हाड़ौती मे देवी देवताओं की इतनी उदार स्वीकृति को यहाँ के लोक साहित्य में भी पर्याप्त स्थान मिला है। लोक गीतो लोक गाथाओं, लोक नाटकों लोक कथाओं और यहाँ तक कि कहावतों व उपमानों तक उन्हें स्थान प्राप्त हुआ है। भारत में भक्ति की अजस्र धारा अतिप्राचीन काल से प्रवाहित है जिसका एक रूप गणेश पूजा में भी मिलता है। शास्त्र तथा लोक में समान पूजित गणेश हाड़ौती के लोकगीतो गाथाओं कथाओं आदि में प्रथमस्मरणीय बने हुए है। यह भिन्न बात है कि इस क्षेत्र के किन्ही गणेश जी को वह स्थान लोक साहित्य में नहीं प्राप्त हुआ जो रणथमौर के गणेश जी को मिला है। गणेश जी के स्तोत्र लोकगीतो में भरे पड़े हैं। उनमें उनके रूप गुण की प्रशंसा मिलती है और उनसे अनुकूल फल दान की याचना भी है। लोक नाटकों में उनका स्मरण इसलिए किया जाता है कि वे विघ्न विनाशक हैं और लोक गाथाओं में उनका स्मरण मंगलाचरण स्थानीय है। पृथ्वीराज के पवाड़ा में उनका स्मरण मंगलाचरणरूप में है—

गवरी का गणपत थान सुवरस्यू, लागू गुरा के पाय।

गणेश सम्बधी लोककथाएँ अनेक मिलती हैं। एक कहानी में गणेश जी को ताद पर तिल चिपक जाने पर उन्हें राजा के यहाँ नौकरी करनी पड़ती है। एक अन्य

महाने में उसकी ताद के घी से किसी वस्तु द्वारा अपनी आंखियां चुपड़ लेने पर वे रुष्ट होकर अपनी नाक पर अँगुली रख लेते हैं और उस वे वस्तु की लकड़ी की मार के भय से घट से उतार लेते हैं, जिसे पूजा प्रतिष्ठा उपरान्त भी वे नहीं उतारते हैं।

सती धाड़ी को गणेश के उपरान्त महत्वपूर्ण स्थान मिला है। मांगलिक गीतों में गणेश के बाद स्त्रियां इनके गीत गाती हैं। ऐसे गीतों की भाषा अति प्रयोग से इतनी घिस गई है कि सहसा समझ में नहीं आती है। धाड़ी या देवी के एक गीत में उससे परिवार के मंगल की कामना की गई है—

म्हारे आज ए आणद उछाव
म्हारे टूटो धाड़ी माता भाव स।
माता धाड़ी का थो मड़ड में
घोघर ऊबळो हाथ जोड़यो।
आज म्हारे ए गोरी मैंमड़ो थोपल्यो
ऊको मैंमड़ी न जाया छ लाडण पूत।

और सती के गीतों में भी उससे यही प्रार्थना की गई है कि मुझे एक पुत्र दे, क्योंकि उसके अभाव में परिवार जन मेरे विपरीत हैं—

महा माई एक झडूल्यो देय
एक झडूल्या क कारण म्हारो कत परायो
सेज पराई, रूस्यो सब परिवार।

कोटा के रंगबाड़ी के बालाजी को लेकर अनेक लोकगीत गाए जाते हैं, जिनमें 'रंगबाड़या का बाला जी म्हारी माइली की हाकण छोडो जी और 'सूरज छतरी में बाला जी रंगबाड़ या मैं' गीत अति प्रचलित है। बालाजी या हनुमान जी को लेकर जो गीत प्रचलित हैं उनमें उनके रूप सौन्दर्य और पराक्रम पूर्ण कृत्यों का वर्णन रहता है। लोक नाटकों में भी वीर हनुमान का स्मरण आरम्भ में किया जाता है।

बूंदी के चारभुजा के मंदिर का वर्णन एक लोकगीत में इस प्रकार मिलता है—

ऊँचा ऊँचा मदर लाल धजा, परभूई मदर की देखो छटा।
मदर साम गरुड जी बराज दरवाजा म हस्ती खड़ा।
गढ़ बूंदी बराज चारभुजा, गढ़ गोर बराज चार भुजा।

इसी प्रकार केशोराय जी, मथुराधीश जी आदि की स्तुतिपरक अनेक गीत स्त्री समाज में प्रचलित हैं।

तेजाजी देवनारायण, हीरामन जी पाबूजी आदि को चरित विषयक लोक गाथाएं इस क्षेत्र में विभिन्न अवसरों व त्योहारों पर गाई जाती हैं। तेजा दसमी

को गाई जाने वाली गाथा म पारिवारिक, सामाजिक और वयक्तिक प्रेरणाएँ विद्यमान हैं। देवनारायण की गाथाएँ बगडावता की होड' का अग बनकर आई हैं। ज म से अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवनारायण वशानुगत वर वश रन के राव जी को युद्ध म मार डालते हैं पर अपना शेष जीवन गौ सवा म व्यतीत करते हैं। हीरामन जी भी बाल्यकाल मे ही अलौकिक शक्ति सम्पन्न व्यक्तिरूप म चित्रित हुए हैं। इन वीरो के त्याग और वीरता ने इन्हें देव स्थान तक पहुँचाया है और आज लोक मानस इनका उपयोग कष्ट निवारण के लिए करता है। तेजाजी सव विष नाशक देवता हैं और देवनारायण गौ रोग शामक देव हैं। भक्ति और वीर रस से युक्त इन गाथाओ ने लोक मन को गहराई से पकड रखा है।

हाडौती की लोक कथाओ म विभिन्न देवी देवताओ को पर्याप्त स्थान मिला है। धार्मिक लोक कथाओं का प्राय एक ही उद्देश्य मिलता है कि देवता विशेष की पूजा भक्ति भाव से करनी चाहिए। 'करवाचौथ माता' की नायिका व्रत प्रभाव से अपने मृत पति को जीवित करा सकी है। 'आठ सामागवती' की कहानी में पातिव्रत धम की प्रतिष्ठा की गई है। शनि देवता की कहानी भी विक्रमादित्य पर शनि ग्रह क प्रकोप और मुक्ति की कहानी है। इसी प्रकार नाग पाँचे, बछ बारस, नरजला ग्यारस की कथाएँ धार्मिक विश्वासा को पुष्ट करती हैं। तिथियों तक को देवीरूप मे स्वीकार करना लोक मानस की अदभुत विशेषता है।

इस क्षेत्र के लोक देवी देवता यहाँ के लोक साहित्य मे सवत्र स्वीकृत हुए हैं। वे हाडौती जीवन क अभिन्न अग बनन स कहावना तक म प्रवेश पा गए हैं, यथा—आधा म देवी देवता अर आधा म खेतरपाळ तथा उ ॰ उपमान रूप म भी अपनाया गया है—या तो काळी क काळी छ।

हाड़ौती का कलात्मक नाटक रज्या-हीर

रज्या हीर हाड़ौती का सर्वश्रेष्ठ कलात्मक नाटक है जिसमें रज्या (रांभा) तथा हीर की प्रेम कथा कही गई है। इस नाटक में काव्य सौन्दर्य जितना निखरा है उतना अन्य नाटकों में नहीं निखर पाया है। साधारण लौकिक कथा के अति रिक्त यह सूफियों की प्रतीक पद्धति के ढंग पर लिखी गई रचना भी प्रतीत होती है। इसमें प्रेम भौतिक नहीं आध्यात्मिक है। हीर साहित्य ने पंजाबी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है। वहाँ के लोक जीवन और साहित्य में रज्या और हीर की प्रेम कथाओं और गीतों की प्रचुरता है। वहाँ से ही हाड़ौती लोक साहित्य में यह प्रेम कथा आई है।

कथानक

रज्या जो नाटक का नायक है एक बार हीर के अलौकिक सौन्दर्य को स्वप्न में देख लेता है और उससे इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि अपने मंत्री बीरबल से स्वप्न की बात कहता है और हीर से मिलने के लिए आतुर हो उठता है—

> जद मलगी हीर दीवाणी नत उठ रऊ उदास।
> बीजळी सी या चमकती स म्हारो नत नत सूख सांस।
> चलो बीरबल हीर मना दो, जद आवे बसवास।
> देख ख्वाब में खसी ज्यो होया, म्हार लगी हीर की आस।

बीरबल रज्या को स्वप्न की बात पर विश्वास न करने तथा प्रेम-मार्ग की दुरूहताओं को समझाकर उससे दूर रहने का आग्रह करता है पर रज्या इससे अप्रभावित रहता है। जब यह समाचार माँ के पास पहुँचता है तो वह अपने पुत्र को राज्य सुख भोगते हुए अपने पास रहने के लिए समझाती है पर वह भी असफल होती है। रज्या की मामी भी रज्या को समझाने का असफल प्रयत्न करती है।

उसका क्रोध तो बीरबल पर भी होता है, क्योंकि रज्या की माँ तथा उसका ऐसा विश्वास है कि रज्या को यह मार्ग बतलाने वाला बीरबल ही है—

रज्या सदी न जाव अबा, हुक्म करो दिल खोल।
हराम जादा उजीर न या, मचा रखो छ पोल।
जादू करक अलग खडो छ, तुझे पडा नइ तोल।
पटक्या फद लाल प ऊन, पास जादू की नोळ।

अत म रज्या बीरबल को लेकर हीर से मिलने के लिए चल पडता है। मार्ग मे विशाल समुद्र आता है जिसमे बिना पोत की प्रतीक्षा किये दोनों अपने घोडे डाल देते हैं और उस स्थान पर पहुंच जाते हैं जहाँ हीर का बगला किसी सुरम्य उद्यान के मध्य मे बना हुआ है। जग सीयाला की निवासिनी हीर का निश्चित आवास कहाँ है और वहा कैसे पहुचा जा सकता है इनकी सूचना बीरबल से प्राप्त कर रज्या हीर से मिलने के लिए चल पडता है। वह मालिन को रिश्वत देकर उद्यान मे प्रवेश कर लेता है। जब मालिन दरोगा से फटकारी जाती है तो वह कुपित होकर रज्या की शिकायत राजा फतमल से जाकर कर आती है—

रज्या तो हीर मिलण कू आया छोड र तगत हज्यारी।
कळी कळी गुलबन की तोडी, बाग बगाड यो सारो।
लडो लडाई करो तयारी, लीज्यो बर हमारो।

इस पर फतमल विशाल सेना लेकर चढ आता है। रज्या और फतमल के द्वन्द मे रज्या घायल होता है। घायल अवस्था म सना प्राप्त करने उपरा त वह लौंडी से प्रार्थना करता है कि तू मुझे हीर से मिला दे—

हीरो हीरो पुकारूं लौंडी खुप गई कलेजा माई।
खुदा तुमारा भला करेगा, मला हीर क ताई।

जब किसी प्रकार उधर हीर को रज्या के सच्चे प्रेम का पता लगता है तो वह भी रज्या से मिलने के लिए तडपने लगती है। रज्या हीर के पास पहुँचता है तो वह उस पर अत्यधिक क्रोधित होती है और वह उसे भाग जाने के लिए कहती है—

दे मारु तलवार बोलिया, किस बद आगो जाव।
× × ×
नक्ळो बागाँ बारे मुसाफिर, किस बद मूड पछाव।

रज्या की 'प्यार मोहब्बत' का प्रस्ताव तथा दीनता प्रदर्शन हीर को रज्या की ओर आकर्षित कर लेते हैं। अब वह तन्मय होने के लिए अधीर हो उठती है—

बालम नरमोई कर लो दोसती, ज्यान मत तरसाबो।

तत्पश्चात् दोनों का मिलन होता है। दोनों चौपड़ खेलने में और आनन्द क्रीडा में लीन होते हैं। यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

वस्तुतत्त्व

'रज्या हीर' का कथानक अति सरल और अविकसित है। नाटककार का ध्यान नायक नायिका की भावाभिव्यक्ति की ओर ही रहा है। रज्या के प्रस्थान करने के उपरांत उसका समुद्र में घोड़ा डालना और युद्ध में मूर्छित होकर गिरना दो ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे नाटक में कथात्मक आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। यहाँ दर्शक की उत्सुकता तीव्र हो जाती है और परिणाम जानने की लालसा भी। इस नाटक में कार्यावस्थाओं का उभार स्पष्ट दिखाई नहीं देता। फिर भी स्वप्न दर्शन से प्रेम के उदय में नाटक की आरंभ कार्यावस्था को देखा जा सकता है। 'यत्न' अवस्था माता भाभी से विदा लेकर समुद्र पार जाना तथा उद्यान में प्रवेश तक देखी जा सकती है। इसके पश्चात् प्राप्त्याशा का स्वरूप बनने ही लगता है कि पतमल से युद्ध और मूर्छित होने के प्रसंगों के उपरांत जो 'फल प्राप्ति' से दूर ले जाते हैं हीर में विरह वेदना की जागृति नियताप्ति अवस्था की सूचक है और अंत में दोनों के मिलने में 'फलागम' को देखा जा सकता है। प्राप्त्याशा का स्वरूप अत्यंत धुंधला और क्षीण है।

प्रतीकात्मकता

'रज्या हीर' की कथा सांकेतिक कथा भी है। नाटककार ने इन संकेतों को जायसी के समान स्पष्ट नहीं किया है पर नाटक की कथा का निर्वाह तथा पात्रों की चित्रण शैली से समस्त घटनाओं तथा पात्रों को एक अन्य रूप में समझने की प्रेरणा भी मिलती है। नाटककार जिस प्रेम की प्रतिष्ठा इस नाटक में करना चाहता है वह 'पाक मुहब्बत' है जिसमें किसी वासना की गंध नहीं है। वह सूफियों का इश्क हकीकी है 'इश्क मजाजी' नहीं। इस प्रेम की उत्पत्ति स्वप्न दर्शन से हुई है। प्रेम के उदय होने के उपरांत नायक नायिका को प्राप्त करने के लिए राज्य सिंहासन का त्याग करके अंगों में भभूत लगाता है और फकीरी वेश धारण करता है—

> तगत हज्यारा गादी तुज कर अंग भभूत लगाया।
> *कई तर समझाया ओलिया, लिया फकीरी जामा।*

यह कथन प्रेम मार्ग की साधना में सांसारिक आकर्षण से मुक्त होने की ओर संकेत करता है। जिस मार्ग में वह चलता है उसमें बीरबल के अतिरिक्त अन्य कोई साथ नहीं होता वही उसे हीर के निवास का मार्ग दिखलाता है। उसी ने रज्या को लौकिक रंग रसों से पृथक किया है। उसी ने सारा फंदा डाला है

वह स्वय रग भीना है तथा जादू करके दूर खडा है—

पटक्या फद उजीर न, रज्या को वस कीना।
भूल्या घर की बात, लाल न, रग रस सब तज दीना।
उजीर डाल्या फद लाल प, समभो जो रग भीना।
जादू करके अलग खडा छ, तुन्हे पडे नई तोल।

यह बीरबल जायसी का सुआ है—गुरु है जो साधक या जीवात्मा को मार्ग प्रदर्शन करता है। रज्या म जीवात्मा या साधक का प्रतीक मिलता है और हीर परमात्मा की प्रतीक है। रज्या हीर के स्वप्न-दर्शन के उपरान्त उससे मिलने को उत्कठित हो जाता है। तब माता और मामी तथा राज्य सुख उसे फुसलाने वाले गोरख धन्धे के रूप म चित्रित किये गए हैं। जो स्थिति 'पद्मावत' मे नागमती की है वही यहाँ उपयुक्त वस्तुओ की है समुद्र प्रेम का प्रतीक बनकर आया है जिसमे तर कर रज्या हीर के समीप पहुँच जाता है। उपवन के अनेकानेक आवपण मालिन का रोकना आदि साधना मार्ग म पडने वाली विघ्न-बाधाएँ हैं। तू इन विघ्न बाधाओ या परीक्षाओ म जो साधक सफल होता है, वह ही 'वस्ल' को प्राप्त कर सकता है। हीर के सम्मुख पहुँचने पर भी रज्या के प्रति अकरुण व्यवहार लौकिक का य की दृष्टि स कोई महत्व नही रखता, पर प्रतीक-पद्धति म परमात्मा द्वारा साधक की अतिम परीक्षा लेन की ओर सकेत करता है। वहाँ उसके सच्चे प्रेम की परीक्षा होती है। इसीलिये मिलनोपरान्त भी हीर कहती है कि रे रज्या दूर हट, अन्यथा तलवार से प्रहार कर दूगी। तू कसे आगे बढ रहा है। ऐसा अनुनय विनय किससे करता है और किससे प्रेम करता है। यहाँ बडे-बडे सम्राट भी प्रवेश नही कर पाते हैं। यात्री, तू यहाँ से निकल भाग। व्यर्थ मे क्यो खोपडी चाटता है—

रज्या करो सरक जा यार, सु त क दे मारू तरवार।
दे मारु तरवार खोलिया, फस बद आगो आव।
ऐसी बदगी करता कुण स, कुण स नेह लगाव।
बडा-बडा गुलजार बादसा जरा पास नह आव।
नकळो बागा यार मुसाफिर, बस बद मूड पचाव।

साराश यह है कि नाटककार ने रज्या-हीर की कथा म एक रूपक का निर्वाह भी किया हैं जो साद्यन्त मिलता है। इस रूपक के निर्वाह में नाटककार ने सूफियो की प्रतीक पद्धति को अपनाया है। यद्यपि नाटक के अन्त या मध्य मे इन प्रतीको को स्पष्ट करन क सकेत नही दिय गए हैं किन्तु आरम्भ मे रज्या अपने स्वगत कथन म अपनी मित्रता या प्रेम का आदर्श लैला मजनू का प्रकट करता हैं।

लला मजनू करी दोसती भाव खुदा का रखया।

सहो नी मनू धीदो रांभा।
मनू हीर न आवे कोई।

कुछ काल बाद हीर रांझा की कथा म दो एक स्थल अश्लील भी आकर मिल गये।[1]

हाडोती नाटक की कहानी और पजाबी लोक साहित्य म मिलन वाली कहानी[2] म अत्यधिक अंतर है। हाडौती कहानी सीधे सीधे अन्त तक पहुचकर समाप्त हो जाती है। यह सुखान्त है। पजाबी कहानी म काफी उतार चढाव व घुमाव फिराव है और यह दुखान्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि हाडोती के नाटककार के पास यह पजाबी लोक कथा सीधे न पहुचकर किसी ऐसे माध्यम से पहुँची, जिसम इतना घुमाव फिराव न हो।

इस विवेचन स दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—प्रथम 'रज्या हीर' नाटक के नायक और नायिका ऐतिहासिक हैं और ये दोनो मुस्लिम परिवारो म पैदा हुए थ।[3] पर कीरजन की सृष्टि कल्पना द्वारा हुई है। फतमन को भी ऐतिहासिक पात्र स्वीकार कर लेने के लिए कोई आधार नहीं मिलता है।

द्वितीय समुद्र म घोडा डालना, उद्यान प्राप्ति क वणन सूफी काव्यो के प्रभाव स हुए हैं। सूफी काव्य मे समुद्रप्रेम का प्रतीक है। उसम साधक तरता है या उसम डूबता है तब अपने प्रिय से उसकी भेंट होती है। यह हाडौती नाटक मे भी मिलता है।

चरित्र चित्रण

यह नाटक प्रतीक पद्धति पर लिखा होने के फलस्वरूप चरित्र चित्रण मे नाटककार ने लौकिक और अलौकिक दोनों पक्षो का समाहार किया है। अत पात्रो की रेखाए कही कहीं टूटी हैं। नाटककार का झुकाव आदश की ओर है।

रज्या

नाटक का नायक रज्या—नाटक म एक प्रेमी के रूप मे चित्रित किया गया है। रज्या के प्रेम का उदय स्वप्न दशन से होता है और वह दीवाना हो जाता है—

भर दीवाना हो रीया र, म्हू पडू समदर माई।
एक दाना सपना क माई, हीर दीवानी आई।

१ विशष जानकारी के लिए दखिए बला फूले आधी रात पष्ठ १७६
२ वही पृष्ठ १७४
३ वही पृष्ठ १७४

लैला मजनू फारसी मराठी आदि म लिखी गयी एव प्रसिद्ध । हमारे नाटककार को भी प्रेरणा दे रही है । इस कथा प्रसार का वास्त 'इश्क मजाजी' के द्वारा 'इश्क हकीकी' का प्रतिपादन करना रहा है । भावना की उत्पत्ति स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन गुण श्रवण या सा ात् द है । नायक नायिका के सौन्दर्य पर विमोहित होकर मिलन के लिए आतु है और फिर लक्ष्य प्राप्ति के हेतु सवस्व त्याग कठिनतम बाधाओं को र को सन्नद्ध हो जाता है । विघ्न बाधाओं को झेलता हुआ अग्रसर हो सफलता प्राप्त कर पुन अनेक झंझटों को पार कर नई स्वर्गीय प्रत्याव है ।[1] पजाबी म सूफी कवि वारिसशाह का 'हीर रांझा' काव्य ऐसी गाथा है जिसका लिखित रूप भी है और लोकगाथा रूप म भी प्रचलि

आधार

'हीर की कथा सबसे पहले दामोदर ने अकबर के शासन म लिख दामोदर हीर के जन्म-स्थान झग (पश्चिमी पाकिस्तान) के रहने वाले थे। लिखना है कि हीर का वृत्त त उनका आँखो देखा हाल है । हीर रांझा की अकबर के राज्यकाल स करीब ४४ वष पूव की थी । तब भारत म बा चुका था । घोडो की टापो से देश की धरती उखड रही थी ।[3]

इसके पश्चात वारिसशाह ने हीर की प्रेम कथा को अपनी प्रेम की प रंग कर अमर बना दिया । वारिसशाह स्वय प्रेम की पीर से पीडित थे । धीरे रांझा और हीर की लौकिक कथा म पाया जाने वाला अलौकिक प्रेम गुरुदास को प्रभावित कर गया और उन्होने कहा

राझा हीर बखानिये ।
ओह पिरम पिराती ।

तथा गुरु गोविंदसिंह ने हीर के प्रेम की सकेतात्मक रूप म सराहना की है—

यारणे दा सोनू सथ्थर चारा ।
भट्ठ खडियां दा रहणा ।

और सूफी कवि बुल्लेशाह का भी ध्यान इस प्रेम कथा पर गया । उन्हाने दो के प्रम का इस प्रकार वणन किया —

रांझा राझा करदी नी ।
मैं आपे राझा होई ।

---

१ डा सरला शुक्ला जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य पृष्ठ २८५
२ डा धीरेन्द्र वर्मा आदि हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ ८५२
३ सत्यार्थी बेला फूले आधी रात पृष्ठ १७१

हीर केल की गरब पान की पीक कठ मे झलक ।
कठ कोकला कोयल बोल, मोर मेह जनमन के ।

× × ×

चद वदन गुलजार नण मैं सुरमा लीना मांड ।

× × ×

लम्बी चोटी प्रटक रही यारे, जसे नाग भुजग ।
देखे नाग भुजग बदन पर खूब कसूमल रग ।

× × ×

सीस बणाया नारेळ हीर का पेड मलाई मेल ।
मूगफली सी आँगळयाँ, सीना प दीपक का मेल ।

जिम प्रेम का उदय रज्या के हृदय म होता है वही प्रम हीर के हृदय मे पहुँचकर रज्या के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न कर देता है । हीर के प्रम का आधार रूपासक्ति नही है, अपितु वह आकषण है जो दो प्रमियो के हृदयों मे मिलता है । उस प्रेम की चरमावस्था को पहुँचकर वह पूण आत्मसमपण करने को विह्वल हो उठता है यद्यपि प्रारम्भ म उसमे स्त्री सुलभ लज्जा और तज्जन्य रज्या के प्रति कठोरता क दशन होते हैं । उसका समपण शारीरिक और मानसिक दोनो है—

लद होवगी रात ज्यान मेरी तुझ पर आसक होई ।
या सूरत खटकी दल माई, ज्यू तरवार सरोई ।
सद रहा परदा के भीतर नजर न आया कोई ।
गली बावळी करी आवन, जादू कर-कर मोई ।

हीर ने अभी तक किसी पुरुष का मुह देखा ही नही था । अब रज्या की सूरत देखकर उसकी आसक्ति तीव्रतम रूप मे प्रकट हुई । रगरेलिया उसे प्रिय हैं अत उद्यान म सर करती है, पर इमसे भी अधिक प्रिय उसे एकात रहा है । जिसका कारण पिता का कठोर नियत्रण है ।

हीर का पिता फतमल कठोर पिता और वीर राजा है । वह अच्छा योद्धा भी है । बीरबल मे चतुर मत्री के गुण विद्यमान हैं । उसी के सकेत पर चलकर रज्या हीर को प्राप्त कर सका है । रज्या म प्रेम के उदय म उसका कोई दोष नहीं दिखाई देता, फिर भी उसे मामी तथा माँ का कोप भाजन बनना पडता है । मामी तथा माँ म जातिगत विशेषताएँ विद्यमान हैं ।

रस

रस की दृष्टि से 'रज्या हीर' म शृङ्गार रस की प्रधानता है । शृङ्गार रस का

वह उसके सौन्दर्य पर आसक्त है। यह रूपासक्ति ही प्रेम में परिणत हो जाती है। उसका प्रेम सच्चा प्रेम है। उसमें किसी प्रकार का जादू टोना नहीं है तथा खुदा का हुक्म भी इस प्रेम के पक्ष में है—

मे हीरो से करां दोसती, हुक्म खुदा का पाई।
पाक दोसती करां हीर सूं, कया कुछ न खोस्या तोई।
जादू करके प्रीत लगाय, वो मूरख नर होई।

इस सच्चे प्रेम का प्रमाण लैला मजनूं का आख्यान है। उसकी लगन इतनी सच्ची है कि माता, मावज और चीरवल सबके विरोध की वह उपेक्षा कर देता है—

उस भावज का लिया न माना, आग लगो सब थांक।

प्रेम की सच्ची लगन होने से वह माग के कष्टों की चिंता नहीं करता है। इसलिये समुद्र को तर जाता है। कतमल की तलवार उसे पथ विचलित नहीं करती, अपितु उसके उत्तर में उसकी निर्भीकता व साहस झलकता है—

सारी फोजा मार थारी, जग जीत मह जाव।
भटका सू मटका करं थू तडप तडप मर जाव।

बीरबल ने जिस प्रेम का उदय उसमें किया है उसी प्रेम का विरोध करते देखकर वह उसको भी भला बुरा कहता है। अन्त में, जिस हीर को प्राप्त करने के लिये वह प्रयत्नशील है उसके समीप पहुँचकर ही उसे तृप्ति नहीं मिलती, अपितु उसमें तन्मय हो जाना चाहता है।

हीर

नाटक की नायिका हीर रज्या की प्रेमिका है और अपूर्व सुन्दरी है। बारह वर्षीया हीर के नेत्र बाण के समान हैं। भौंहे कमान (धनुष) के समान हैं जिससे उसने रज्या को शीतल तीर मारा है। वह दखनी चीर ओढती है। वह बिजली सी चमकती है जिससे रज्या का नित्यप्रति श्वास सूखता जा रहा है। उसके कंठ में पान का पीक तक दिखाई देता है और कोकिल कंठी है। वह चन्द्र वदनी है तथा नेत्रों में सुरमा लगा रखा है। उसकी लम्बी चोटी है जैसे भुजंग हो। उसके सारे शरीर पर कुसुमी आभा है उसका सिर नारियल के समान है और अंगुलियां मूंगफली के समान हैं तथा छाती दीपक के समान जगमगाती है।

नैण बाण भोंर कुबाण, म्हार सीतल देगी तीर।
बारा बरस की बोसता, वो ओढ या दखणी चीर।

× × ×

बीजळी सी वा चमकती, म्हारो नत नत सूख सास।

× × ×

हीर केल की गरब पान की पीक कठ मे झलक ।
कठ कोकला कोयल बोल, मोर मेह जनमन के ।

× × ×

चद वदन गुलजार नण मैं सुरमा लीना माँड ।

× × ×

लम्बी चोटी ग्रटक रही थारे, जसे नाग भुजग ।
देखे नाग भुजग वदन पर खूब कसूमल रग ।

× × ×

सीस वणया नारेळ हीर का पेड मलाई मेल ।
मूगफली सी ग्राँगळयाँ, सोना म दीपक का मेल ।

जिस प्रेम का उदय रज्या के हृदय मे होता है वही प्रम हीर के हृदय मे पहुचकर रज्या क प्रति ग्रनुरक्ति उत्पन्न कर देता है। हीर के प्रेम का ग्राधार रूपासक्ति नहीं है, ग्रपितु वह ग्राकषण है जो दो प्रेमियो के हृदयों म मिलता है। उस प्रेम की चरमावस्था को पहुँचकर वह पूण ग्रात्मसमपण करने को विह्वल हो उठती है यद्यपि ग्रारम्भ म उसमे स्त्री सुलभ लज्जा ग्रौर तज्जन्य रज्या के प्रति कठोरता क दशन होते हैं। उसका समपण शारीरिक ग्रौर मानसिक दोनो है—

चद होवगी रात ज्यान मेरी तुझ पर ग्रासक होई।
या सूरत खटकी दल माँई, ज्यू तरवार सरोई।
सद रही परदा के भीतर नजर न ग्राया कोई।
गली बावळी करी ग्रापन, जादू कर-कर मोई।

हीर ने ग्रभी तक किसी पुरुष का मुह देखा ही नही था। ग्रब रज्या की सूरत देखकर उसकी ग्रसक्ति तीव्रतम रूप म प्रकट हुई। रगरेलियाँ उसे प्रिय हैं ग्रत उद्यान म सर करती है पर इससे भी ग्रधिक प्रिय उसे एकात रहा है। जिसका कारण पिता का कठोर नियत्रण है।

हीर का पिता फत्तमल कठोर पिता ग्रौर वीर राजा है। वह ग्रच्छा योद्धा भी है। बीरबल म चतुर मत्री के गुण विद्यमान हैं। उसी के सकेत पर चलकर रज्या हीर को प्राप्त कर सका है। रज्या म प्रेम क उदय में उसका कोई दोष नहीं दिखाई देता, फिर भी उसे मामी तथा माँ का कोप भाजन बनना पडता है। मामी तथा माँ म जातिगत विशेषताएँ विद्यमान हैं।

रस

रस की दृष्टि स 'रज्या हीर' म शृङ्गार रस की प्रधानता है। शृङ्गार-रस क

के सम्बन्ध म विचार हो चुका है इसलिये यहाँ हमारी ओर कुछ हल्का हो जाता है।

'रज्या हीर के नाटककार म छिपा कवि भावों की गहराई म प्रवेश करके उनका सरस शैली म चित्रण करता है। इसकी शैली में इतनी सरसता और प्रभावोत्पादकता है कि नीरस कथनों तक में सरसता का संचार हो जाता है। प्रत्येक पात्र आवश्यकता पड़ने पर [illegible] है। इसलिए नाटक मे स्थान स्थान पर अनेक अलंकार [illegible] है। [illegible] में सबसे प्रिय अलंकार उपमा है—

नण बाण, भवरा कुवाण, [illegible] हीर।

सीतल तीर दर्पी म [illegible] है और [illegible] और 'भवरा कुवाण' म लुप्तोपमा है। उपमाओं म उपमान परम्परा [illegible] है अपितु मौलिक और प्रस्तुत के मेल म है—

हीरो थू टाट्या को छातो, मे नहं घालू हाथ।

बर का छाता दूर स मधुमक्खी के छत्ते का आकर्षण तो उत्पन्न करता है, पर यदि किसी ने बिना देखे उसमे हाथ डाल दिया तो [illegible] के स्थान पर डंक ही मिलने की सर्वथा संभावना है। हीर का बर का छत्ता बनाने म हास विलास के समय छोड़ा गया एक तीक्ष्णतम व्यंग बाण का बोध होता है। उत्प्रेक्षा के उदाहरण भी अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं।

कभी कभी एक पूरे व्यापार के समानान्तर दूसरा व्यापार चुनकर भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—

मरगा तरस नीर बना ज्यू तरसाव प्यारा।

किन्हीं स्थानों पर यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ जाती है कि [illegible] का क्रम अन्योक्ति पद्धति पर चलने लगता है—

रज्या— सगणी ने ईसक करयो मरगा स दोमन [illegible]।
घर की तरया तुज दीनी सुण भावज [illegible]।
मरगो तो छल स भरयो, या [illegible]।
नइ तडपती ज्यान आपणी मरगा [illegible]।

भावज— लिया हमारा माननार, वा करना [illegible]।
दादर प्रीत करी टलडो स, फिर [illegible]।
सींग पलट सींगणी सू मरगा [illegible]।
बालक दे मरगया रगीला [illegible]।

वास्तव मे 'रज्या हीर नाटक म [illegible] देखकर आश्चर्य होता है।

हाडौती का एक प्रसिद्ध लोकनाटक
सत्य हरिश्चद्र

हरिश्चद सूयवन का एक ऐसा राजा है जो अपनी सत्यव्रतता और दान-शीलता के कारण इतिहास और पुराण ग्रन्था म अपना स्थान बना चुका है। उसके अनुकरणीय आदश चरित्र ने साहित्यकारा को भी प्रभावित किया और सस्कृत हिन्दी म भी काव्य, नाटक लिखे गय। ऐसे प्रसिद्ध और लोकरजक चरित्र की ओर लोक की दृष्टि भी अतीत से लगी हुई है और वह अपनी पूज्य बुद्धि की स्वीकृति कहानिया व नाटको म प्रकट करता आया है। राजा हरिश्चद्र के जीवन चरित को लेकर नामहीन नायकों की कथाएँ तनिक हेर फेर के साथ लोक म प्रचलित हैं। लोकनाटका म ऐसे नरेश के त्याग और तितिक्षा म प्रत्यक्ष घटित होत दिखाया जाता है जिसका दशक पर प्रत्यक्षदर्शिता का-सा तत्काल गहरा प्रभाव पडता है। इसीलिए लोकनाटका में हरिश्चद्र के समान ही प्रह्लाद ध्रुव, गोपीचद आदि के प्रसिद्ध चरित्रा को स्थान मिला है।

हरिश्चद लीला हाडौती म अनेक स्थला पर अभिनीत होती है। स्थान भेद से अभिनय भेद और प्रतियो म पीठातर भेद मिलत हैं। बूँदी नगरी, हाडौती की सस्कृति की केद्र नगरी रही है। वहाँ के जन-जीवन म लोकनाटकों के प्रति सहज ही अनुराग है। इसलिए लगभग सभी नाटका की प्रतियाँ वहाँ उपलब्ध हो जाती हैं। प्रस्तुत नाटक की प्रति मुझे बूँदी से ही प्राप्त हुई है। वहाँ कई अखाडे हैं जिनकी अलग अलग उस्ताद परपरा रही है। ये उस्ताद कभी कभी लेखक भी होते थे। प्रस्तुत प्रति का लेखक मदन है जो बीच बीच म अनेक गीतो म अपनी छाप अकित किये हुए है—

मदन कहे तू नाथ बचावन हारे।

× ×

मदन कहे यस महीं रानी का, झड़ी लगाई नन।

लगभग ऐसी ही छाप कालू की भी बीच बीच म मिलती है—

कान्ह कहे सुण राना कँवर कू यहो प देना दाग।
× × ×
कान्ह कहे तुझको अखत्यार।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो ने मिलकर इसकी रचना की हो, पर प्रति की प्रथम तान मे कान्ह के स्थान पर कन्हैया लाल नाम मिलता है —

यहे कन्हैया लाल सूर ने चमन मिलाया धूल।

इससे यह स्पष्ट है कि अंतिम प्रति तक कन्हैयालाल प्रमुखता ग्रहण कर गया था। अन्त सभव है मदन न इस नाटक की रचना की हो और फिर कन्हैयालाल ने नकल करत समय अपना भी नाम इसमे जोड दिया हो। इस प्रति से यह स्पष्ट नही होता है कि यह किस अखाड की प्रति है और उस अखाडे की उस्ताद परम्परा क्या रही है।

कथानक

राजा हरिश्चद (हरिश्चद्र) इसकी कथा का नायक है। वह एक ऐसे स्वण शूकर का शिकार करने जाता है जो उद्यान को विनष्ट करता रहता है। वह शिकार करने म असफल होता है और उसका अनुगमन करनेवाली सेना स पृथक होकर वन मे भटक जाता है। वन माग मे वह प्यास स याकुल हो जाता है और जलपान करना चाहता है पर उसका नियम यह है कि पहले किसी ब्राह्मण को कुछ दान करता है तब वह जलपान करता है। सहसा एक ब्राह्मण वहा प्रकट होता है जो अपनी कन्या के विवाह क लिए धनाभाव से व्याकुल है। हरिश्चन्द्र उसे दान देना चाहता है पर वह यह कहता है कि हरिश्चन्द्र उसे मनो वाछित दान नही दे पायेंगे। राजा के वचनबद्ध होने पर वह उसका समस्त राज्य एव सौ भार स्वण दान स्वरूप मांगता है। हरिश्चद उस समस्त राज्य और ४० भार स्वण जो उसके पास होता है दान कर देता है। शष ६० भार स्वण वह स्व परिवार को बेचकर देने का वचन देता है। उसका पुत्र रोहितास (रोहिताश्व) को जब ज्ञात होता है कि उसके पिता दान के लिए उसे बेचना चाहते हैं तो वह सहष तयार हो जाता है। रोहितास की माँ भी इस पुण्य काय म पीछे नही रहना चाहती है और सत्य के रक्षाथ स्वय का बिकना स्वीकार कर लती है। य तीनो अयो या को छोडकर काशी के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

माग जनित श्रम और ग्रीष्म की सतप्तता माग म रोहितास को विकल कर देती है। एक गाडीवान रानी की प्राथना पर उनक पुत्र का काशी ल चलता है। काशी म तीना प्राणियो का मान-तोल होता है। सब प्रथम रानी को एक वश्या खरीदने आती है। रानी इस समय घम सकट म पड जाती है, उसका पतिव्रत उससे कहता है कि वह वश्या क हाथ न बिके, पर सत्य की रक्षा और पति आज्ञा

उसे गणिका के घर पहुँचा देती है। इस विक्रय से ब्राह्मण (जो विश्वामित्र है) को २० भार स्वर्ण प्राप्त होता है। रोहितास का क्रेता बैजनाथ नामक व्यापारी बनता है जो उसके रूप गुण पर मुग्ध है और उस खरीदकर अपनी पुत्र हीनता की पूर्ति करता है। इससे भी विप्र को २० भार स्वर्ण मिलता है। शेष २० भार स्वर्ण के लिए हरिश्चंद को कलुआ हरिजन के हाथ बिकना होता है। कलुआ उसे यह कार्य बताता है कि वह उसके सूअरों की रखवाली व साज सम्हाल करे और श्मशान में जलाये जाने वाले शवों के लिए प्रति शव ५ टके स्वर्ण ले।

इस विक्रय के पश्चात् तीनों प्राणियों पर विपत्ति का दूसरा दौर आरम्भ होता है। रानी गणिका की सेवा तत्परता से करती है पर वह उसका अन्न-जल ग्रहण नहीं करती है। अन्न कुछ दिनों में वह कृश हो जाती है। एक दिन जब वह जल भरने गंगा तट पर जाती है तब वहाँ बैजनाथ भी होता है। वह रानी की करुण कहानी को सुनकर गणिका को २० भार स्वर्ण देकर रानी को अपने घर ले आता है और उसे बहिन रूप से घर पर रखता है। रोहितास और माता के मिलन सुख के दिन आरम्भ होते ही है कि एक दिन रोहितास सेठ की पूजा के लिए उद्यान मे फूल चुनने जाता है तब वहाँ एक काला सर्प उसे काट लेता है। भगवान विप्र रूप में प्रकट होकर सर्प दंश की सूचना रानी को दे आते हैं। जब तक रानी रोहितास के पास पहुँचती है तब तक वह मरणासन्नता प्राप्त कर लेता है और कुछ क्षण उपरात मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। रोहितास के शव को लेकर रानी श्मशान मे पहुचती है। जहाँ उसके पति कर प्राप्ति के लिए नियुक्त होते हैं। रानी का अनुनय विनय हरिश्चद्र को इस बात के लिए सहमत नहीं कर सका कि बिना पाँच टके लिये वह शव दाह कर ले। रोहितास के दाँत मे जड़े स्वर्ण को दाँत उखाड़कर जब राजा द्वारा कर प्राप्त कर लिया जाता है तब शव दाह की अनुमति रानी को मिलती है। ज्यो ही चिता जलाई जाती है त्यो ही मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो जाती है और वह बह जाती है।

रोहितास की मृत्यु से व्यथित होकर बैजनाथ सेठ रानी पर यह मिथ्या आरोप लगाता है कि रानी डाकिन है और वह उसके पुत्र को खा गई है। वह राज द्वार पर पहुचता है, जहाँ काशी नरेश द्वारा यह आदेश सुनाया जाता है कि रानी का वध कर दिया जाय। आदेश के अनुपालनार्थ हरिश्चद्र के मालिक हरिजन को नियुक्त किया जाता है और वह राजा हरिश्चद्र को आज्ञा देता है कि डाकिन (रानी) का वध कर दिया जाये। पहले तो रानी प्रतिवाद करती है पर अपने पुत्र वियोग की व्यथा से व्याकुल होकर मरने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। हरिश्चद्र तलवार लेकर प्रहार करना ही चाहता है कि एक ब्राह्मण प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लेता है। राजा और ब्राह्मण की छीना झपटी होती है।

तब ब्राह्मण कहता है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ और वह चतुर्भुज विष्णु रूप धारण करता है। यही कथा समाप्त हो जाती है।

वस्तुतत्त्व

इस लोकनाटक की कथा का प्रवाह सहज, सरल व कालक्रमानुसार है। अत कथागत कौतूहल का आधार घटना संयोजन की कला न होकर परिस्थिति जन्य उत्सुकता है। नाटक की प्रारम्भिक घटना ही पाठक के मन में उत्सुकता भर देती है। एक सत्यवादी राजा का अपनी दानशीलता के कारण कंगाल से भी बदतर बन जाना पाठक या दर्शक की संवेदना जाग्रत करने के लिए पर्याप्त प्रसंग है। विप्र द्वारा हरिश्चंद्र, रानी और रोहितास को दान प्राप्ति के लिए बेचने का प्रसंग जहाँ उत्सुकतामय है वहाँ मानव मन को कचोटने वाला भी है। विक्रय की विषमता भी कथाकथन की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पतिव्रता रानी बेची जाती है गणिका को कुल का सम्पन्न नराधिप बेचा जाता है समाज के तत्कालीन निम्नतम वर्ग के व्यक्ति मेहतर को और रोहितास को क्रय करता है एक पुत्रहीन पिता को। उन विषम संयोगों से कथा में प्रसार आता है। नायक के भविष्य की चिंता के साथ साथ नायिका का भविष्य भी चिंत्य बन जाता है और पुत्र हीन पिता से रोहितास किस प्रकार हरिश्चंद्र को पुन प्राप्त होगा, यह दुविधा पाठक को आ घेरती है। तत्पश्चात संयोगवश रानी और बजनाथ का गंगा तट पर मिलन होता है और उसके परिणाम स्वरूप रानी की वेश्या से मुक्ति होती है। वैश्य के घर पर माता और पुत्र का पुन मिलन घटित होते देखकर पाठक को प्रसन्नता होती है। वह संतोष की एक साँस ही ले पाता है कि रोहितास के सर्प दंश के कारुणिक प्रसंग के साथ घटना अप्रत्याशित मोड़ लेती है। तब शवदाह का प्रसंग प्रस्तुत होता है। राजा कर्तव्य में बंधा है पर उसमें पुत्र प्रेम भी है। रानी अपने पुत्र के शव का दाह करना चाहती है पर कर रूप में देने के लिए उसके पास द्रव्य नहीं है। वियुक्त गृहस्थी की संयोग की उत्सुक घड़ियाँ अचिंत्य व अप्रत्याशित हैं। घटना विकास दिखाने के लिए नाटक में कर्तव्य की जीत दिखाई गई है। रानी द्वारा कर चुकाया जाता है। नाटककार शवदाह के प्रसंग में प्राकृतिक संकट दिखाता है और शव दाह नहीं हो पाता चिंता बढ़ जाती है। मानों नाटक समाप्त होते-होते रुक जाता है और पाठक का औत्सुक्य बढ़ता है। इसी बीच सहसा एक नई घटना घटित होती है। हरिश्चंद्र का स्वामी हरिजन भी काशी नरेश के आदेश का अनुपालन करता हुआ उसे आज्ञा देता है कि वह डाकिन रानी का तलवार से वध करे और कर्तव्य में बँधा नायक यह भी करने को उद्यत हो जाता है—अपनी समस्त गृहस्थी को मिटा देना चाहता है। द्वंद्व का सम्मुख प्रसंग है और कथा वस्तु-कला का

चरम बिन्दु । रानी पहले तो दड स्वीकृति का विरोध करती है और बाद म सहमति दिखाती ह । नायक तलवार उठाता ह और नायिका का वध करना चाहता है तब भगवान विप्र रूप म प्रकट होकर वध रोकते हैं और अन्त में चतुर्भुज रूप म दर्शन देते हैं । कथा दुखान्त बनते बनते सुखान्त बन जाती ह ।

वस्तु शिल्प

कथावस्तु म अलौकिक और अस्वाभाविक प्रसग अधिक हैं । राजा द्वारा दान में सवस्व राजपाट का त्याग और उसके परिवार सम्पया का बिकना ईश्वर का विप्र रूप में प्रकट होकर रानी को रोहितास के सपदश का समाचार देना, डाकिन का वध करना ईश्वर का विप्र वश में आकर हरिश्चद्र की तलवार पकड़ना और विप्र का चतुर्भुज ईश्वर में परिवर्तित हो जाना आदि प्रसग लोक मन की श्रद्धापूर्ण स्वीकृतियाँ हैं । स्वर्ण शूकर का प्रकट होना व छिप जाना भी इसी प्रकार की घटना है । इसी प्रकार वस्तु में आकस्मिकता को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त ह । वन में किसी विप्र का प्रकटीकरण अकस्मात होता ह । वन माग में गाड़ीवान का मिलना एक आकस्मिक घटना है । बजनाथ को गगा तट पर रानी का मिलना पूव नियोजित सम्बद्ध घटना नहीं ह । रोहितास को सप-दश का प्रसग भी किसी कारण का काय नहीं ह । इसी प्रकार भगवान का विप्र रूप में प्रकट होना और रानी को डाकिन होने के सदेह में मत्यु दड जैसी घटनाएँ ऐसी हैं जो कथा विकास के लिए तो महत्त्वपूर्ण हैं पर काय कारण सम्बन्ध स ग्रथित होकर उसमें नहीं आई हैं ।

इस नाटक की कथा में मार्मिक प्रसगो की प्रचुरता ह । उसके अनेक प्रसग हृदय तल का स्पश करते हुए चलते हैं । राजा की दानशीलता में सवस्व-त्याग तथा अपने परिवार को बेचना रानी द्वारा गणिका की सेवा करना हरिश्चद्र द्वारा मेहतर की नौकरी करना, वन माग में रोहितास का कष्ट वणन रानी का गगा तट पर रुदन पुत्र का सपदश और रानी का विलाप पिता द्वारा पुत्र को जलाने से मना करना, पति पत्नी पर तलवार उठाना ईश्वर का प्रकट होना आदि ऐसे प्रसग हैं जो नाटक की कथा के मार्मिक प्रसग हैं और उसे काव्य की रसवत्ता प्रदान करते हैं ।

नाटककार इसकी वस्तु को अनावश्यक व अप्रासंगिक घटनाओं से बचाता रहा ह । अत सवत्र कसावट और तारतम्यता ह । वह कायकारण सम्ब ध से जुडी हुई ह । रानी सेठ की नौकरी करने लग जाती ह । तब उसका गगा तट पर पानी भरने जाना और वही हरिश्चद्र का पानी भरने पहुचना सुन्दर कारुणमय प्रसग ह । वहाँ राजा अपना घडा सिर पर रख पान में असमथता प्रकट करता ह और रानी स सहायता करने को कहता ह । रानी उसको सहारा

नही देती, उसे यह युक्ति बताती ह कि पहले वह पानी में डुबकी लगाकर अल्पभार घडे को अपने सिर पर रख ले और फिर स्वय उस लेकर चला जाये। यह प्रसग नाटक में घटना योजना की दृष्टि से अलग थलग पडा ह जिससे नायक की दुबलता व कृशता तथा रानी की स्पृश्यता अस्पृश्यता की भावना व्यक्त होकर रह गई है कथा विकास में इसका कोई योग नही ह।

आधार एव प्रेरणा

हाडौती लोक साहित्य की भक्ति रचनाओ की सजना म अधिकाश मे भाग वत महापुराण को आधार बनाया गया है। सूयवश के बीसवें नरेश हरिश्चद्र का इस पुराण म उल्लेख तो मिलता है पर इस लोक नाटक का प्रेरणा स्रोत वहाँ नही हैं। क्योकि न तो कथा विकास दोनो म समान है और न चरित्र चित्रण म बहुत साम्य है। वहाँ त्रिशकु पुत्र हरिश्चद्र नि सतान है जिन्हे वरुण के वरदान से रोहिताश्व पुत्र की प्राप्ति होती है। वरुण उसे यज्ञ पशु रूप म चाहता है, पर हरिश्चद्र टालता रहता है। अत म रोहिताश्व अजीगत के पुत्र शुन शेप को मोल लेकर अपने स्थान पर प्रयुक्त करता है। इस यज्ञ म विश्वामित्र होता बनते हैं। बाद म वे हरिश्चद्र को ज्ञान का उपदेश भी देते हैं जिससे वह अज्ञान का भस्म करता है और अपने स्वरूप स्थित हो जाता है।[1] इसम विश्वामित्र राजा के अनुकूल वर्णित है। अलबत्ता कथारभ म हरिश्चद्र के निमित्त से वशिष्ठ और विश्वामित्र म द्वन्द्व दिखाया गया है।[2] विश्वामित्र की यही रूक्षता प्रस्तुत लोक नाटक और अन्य सस्कृत हिन्दी नाटको म आधार बनी है।

हाडौती लोक साहित्य का दूसरा आधार ग्रथ महाभारत रहा है पर उसमें वर्णित राजा हरिश्चन्द्र की कथा भी इस लोकनाटक का आधार नहीं बन पाई है। महाभारत के अनुसार हरिश्चद्र का स्वग म जाने का कारण उसका राज सय यज्ञ है।[3] वहाँ कथा का विस्तार भी कुछ नही मिलता है। उसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की हरिश्चन्द्र कथा शुन शेप से सम्बद्ध कथा तक सीमित है जो बहुत कुछ भागवत से मिलती है और विष्णु पुराण म हरिश्चद्र का नामोल्लेख मात्र है।

मार्कण्डेय पुराण म राजा हरिश्चन्द्र की कथा विस्तार से दी गई है जो द्रोपदी के पाँच पुत्रों की मृत्यु और राजा हरिश्चन्द्र की कथा मे है। इस पुराण म वर्णित

है।[1] ३५५ श्लोकों म वर्णित यह कथा प्रस्तुत लोक नाटक के काफी समीप जान पडती है। कथा इस प्रकार है—हरिश्चद्र आखेट के लिए वन म जाता है। वहाँ उसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' का आर्त स्त्री स्वर सुनाई पडता है। यह स्वर विघाम्रा का था जिन पर विश्वामित्र अपने तपोबल से अधिकार कर लेना चाहते हैं। हरिश्चद्र जब वहाँ पहुँचते हैं तब विश्वामित्र को देखकर भय भीत हो जाते हैं। विश्वामित्र के वाक्छल म आकर राजा उन्हें दक्षिणारूप म अपना सर्वस्व दे देता है। तब विश्वामित्र हरिश्चद्र को राज्य स निकलने का आदेश देते हैं और जब राजा प्रस्थान करने लगता है तब राजसूय यज्ञ करान की दक्षिणा विश्वामित्र मांगते हैं। शापानल से भस्म होने के भय स एक माह म दक्षिणा देने का वचन देकर चल देता है। प्रजा उसे रोकती है, पर विश्वामित्र उसकी पत्नी को डडा मारकर राज्य स निकाल बाहर करते हैं। जब राजा काशी पहुँचता है तब विश्वामित्र भी वहाँ पहुँच जाते हैं और दक्षिणा की अवधि का स्मरण कराते हैं। अपनी पत्नी शैव्या के परामर्शानुसार राजा पत्नी और पुत्र को एक ब्राह्मण को बेच देता है और प्राप्त धन विश्वामित्र ले लेते हैं पर वे इसे भी थोडा बताते है। तब राजा प्रवीर चाण्डाल के हाथों बिक कर प्राप्त राशि विश्वामित्र को देता है। राजा चाण्डाल के आदेशानुसार श्मशान भूमि म कर वसूल करने लगता है और चिता स जीवित हो प्रेत हो जाता है। यहाँ उसे एक भयकर स्वप्न दिखाई देता है जिसम वह अपने जन्मान्तरों को भी देखता है। धीरे धीरे उसकी स्मृति क्षीण हो जाती है अत जब शैव्या सर्पदश स मृत रोहिताश्व के शव का दाह के लिए लाती है तब वह उन्हे नही पहचान पाता है और न शैव्या अपने पति को उस दुर्बल रूप म पहचान पाती है। जब वे शनै शनै धीरे धीरे परस्पर पहचान पाते हैं। तब विलाप करने लगते हैं। राजा स्वय जलना चाहता है, पर अपने स्वामी की आज्ञा के बिना नही। पर बाद म पुत्र के साथ वह स्वय भी जलने का निर्णय कर लेती है। जब वे जलने के लिए उद्यत होते हैं, तब धर्म, इन्द्र व विश्वामित्र राजा के पास आते हैं। पुत्र जीवित होता है। इन्द्र राजा रोहिताश्व को राज्य देकर प्रजा सहित पति पत्नी स्वर्ग चले जाते हैं।

इस उपाख्यान की मूल कथा तो लोकनाटक की कथा के समान है, पर विस्तार म अन्तर है। इसी प्रकार चरित्र की मुख्य मुख्य रेखाए भी समान सी हैं। अवसर के अवसर पर दक्षिणा मांगने के हेतुओं मे अन्तर है। नाटक म तारा (शैव्या) पहले गणिका और तत्पश्चात वैश्य बजनाथ के हाथ बिकती है और रोहिताश्व वैश्य के हाथ, पर पुराण म दोनों का क्रेता ब्राह्मण है। इसी प्रकार, पुराण म प्रवीर चाण्डाल है और नाटक म कलुआ भगी। सत्य शब्दों मे समान अन्तिम

---

1 श्री राम शर्मा आचार्य—मार्कण्डेय पुराण प्रथम खंड पृ० १११ से पृ० १२२ तक

है, पर नाटककार एक और सकट दिखाता है कि रानी डाकिन है और राजाज्ञा से हरिश्चन्द्र को उसका वध करना है। कथान्त मे नाटक म तो भगवान स्वय विप्रवेश तथा बाद मे चतुर्भुज रूप म प्रकट होते हैं, पर पुराण म अग्निदाह के लिए प्रस्तुत राजा रानी को बचाने के लिए इन्द्र धर्म व विश्वामित्र प्रकट होते हैं। नाटक की समाप्ति यहाँ हो जाती है, पर पुराणकार कुछ आगे बढकर राजा का सप्रजा स्वर्गारोहण का उल्लेख करता है।

अत स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान इस लोकनाटक का आधार और प्रेरणास्रोत बना है, पर यह अनुवाद नही है। अनुवाद हो भी नहीं सकता था, कारण उपाख्यान प्रबन्धकाव्य है और यह नाटक है। लोकमच, लोकरुचि और लोकतत्त्वो का आवश्यकता ने उपाख्यान की कथा में तनिक हेर फेर कराया और कथा को लोकमानस के अनुकूल बनाया है। यह लोकनाटक, सामती युग की भक्ति प्रेरित रचना है। आरभ का सूअर का शिकार राजस्थान के शूरवीरो की शूरवीरता प्रदर्शित करने का आदर्श बनकर नाटक मे गृहीत हुआ है और अत म चतुर्भुज विष्णु के दर्शन यहाँ की भक्तिधारा की परिणति है। मध्य के प्रसगो म रानी का गणिका के हाथ बिकना नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से अपनाया गया है। अयोध्या काशी की पदयात्रा कष्ट शृखला का बडी बनकर आयी है। बीच-बीच म कुछ करुण प्रसगो की अवतारणा नाटकीय प्रभाव को गहरा करती है।

नाटक के पात्रो के चित्रण म भी समानता है। दोनो के विश्वामित्र समान है, पर हरिश्चन्द्र का कर्तृत्व और व्यक्तित्व उपाख्यान म अधिक उभरा है और नाटक का राहितास व्यक्तित्व शून्य नही है उसका अपना अस्तित्व है।

पुराण के अनेक विचार भाव स्थलों का नाटक म अनुवाद या विस्तार मिलता है—

> सत्येनार्क प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।
> सत्यचोक्तपरो धर्म स्वर्ग सत्ये प्रतिष्ठित।
> अश्वमेध सहस्र च सत्य च तुलयाधृतम।
> अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।[1]

इन्ही का विस्तार नाटक में इस प्रकार है—

> सत सत प सत नेमजा रहे धरा को भार।

× × ×

---

१ पौराण कथा सग्रह – मार्कण्डेय पुराण, भाग प्रथम राजा हरिश्चन्द्र की कथा श्लोक स० ४१ व ४२

सत्त की बांधी लछमी फेर मलगी आय।
× ×
सत्त प साहब मिलसी आक।
× × ×
धम हैं येन ब्रह्म रूप अवतार।

इसी प्रकार कमफल के भोग की बात भी दोनो में समान रूप स मिलती है।

नाटक में रानी को डाकिन कहकर वध करने का जो कथाश मिलता है वह भी नाटककार की उपज प्रतीत नही होता। सस्कृत ग्रथ के आधार पर वामन शिव राम आप्टे ने अपने हिन्दी सस्कृत कोश में उसको इस प्रकार दिया है—एक बार इसके (हरिश्चद्र के) कुल पुरोहित वशिष्ठ न इसकी प्रशसा विश्वामित्र की उपस्थिति में की विश्वामित्र ने विश्वास नही किया। इस पर विवाद खडा हो गया। अत म यह निणय किया गया कि विश्वामित्र स्वय इसके सत्य की परीक्षा लें। तदनुसार विश्वामित्र न इस अत्यन्त कठिन परीक्षण में डाला जिससे कि यह पता लग सके कि क्या यह अब भी अपने वचनो पर दढ रहता है। इतना होने पर भी राजा ने उदाहरणीय साहस का परिचय दिया। यद्यपि इसे इस परीक्षा में अपने राज्य से हाथ धाना पडा। अपने पत्नी और पुत्र को बेचना पडा यहा तक कि अन में अपने आपको भी एक चाडाल के घर बेचना पडा। अपन अदम्य साहस और सचाई के लिए हरिश्चद्र को अपनी पत्नी को मायाविनी मानकर मारने के लिए भी तयार होना पडा तब कही विश्वामित्र ने अपनी हार मानी और योग्य राजा को प्रजा समेत स्वग में ऊँचा स्थान दिया।[1]

भारते दु हरिश्चद्र द्वारा लिखा गया सत्य हरिश्चद्र नाटक का आरम विश्वामित्र की परीक्षा से होता है पर परीक्षा-प्रेरक इन्द्र है। वशिष्ठ यहाँ नहीं है। अत म यहाँ स्वय भगवान् प्रकट होते हैं और उनके साथ शिव, विश्वामित्र आदि भी हैं।[2] पर जो हाडौती नाटक ह उसकी रचना इससे पूव हो चुकी थी।

भारत दु के सत्य हरिश्चन्द्र नाटक का आधार क्षमीश्वर का चड कौशिक कही कही सिद्ध किया गया ह।[3] हाडौती लोकनाटक में इस साहित्यिक रचना की प्रेरणा न होकर मार्कण्डय पुराण की धार्मिक प्ररणा ही आधार बनी है। रामचद्र कृत सत्य हरिश्चद्र नाटक' भी इसका प्रेरणा स्रोत नही बन पाया है। इन सभी नाटकों का आधार एक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान ह और उसमें कुछ हेर फेर कर सभी नाटकों की रचना हुई है।[4]

---

१ वामन शिवराम आप्टे—सस्कृत हिन्दी कोश पष्ठ ११६६
२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक का चौथा अक
३ सोमनाथ गुप्त—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३६ से ४३ तक
४ स० ब्रजरत्नदास भारतेन्दु नाटकावली भूमिका पृष्ठ ३८

मार्कण्डेय पुराण अति प्राचीन पुराण है और इसने भारतीय लोकमानस को पर्याप्त प्रभावित किया है। अतः प्रस्तुत लोकनाटक का आधार मार्कण्डेय पुराण ही रहा है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

प्रस्तुत नाटक में तीन प्रमुख पात्र हैं—हरिश्चन्द्र, रानी व रोहितास। शेष गौण पात्र हैं—विप्र (विश्वामित्र), गणिका, सेठ बैजनाथ, कलुवा मेहतर, गाड़ीवान और ईश्वर। प्रथम प्रकार के पात्रों के चरित्र चित्रण में विस्तार और गहराई दोनों हैं परन्तु दूसरे प्रकार के पात्रों की झलकियाँ मात्र होने से न विस्तार है न गहराई। ऐसे पात्रों को भी मार्मिक प्रसंगों में दिखाकर उनके व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पहलू प्रस्तुत किये गए हैं। दोनों प्रकार के पात्रों में जाति और व्यक्ति दोनों उभरे हैं।

नाटक के नायक हरिश्चन्द्र का चरित्र चित्रण भावना और कर्त्तव्य के माध्यम से हुआ है। वह अपनी दानशीलता और सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध है और दृढ़व्रती है। वह दानवीर है। दान देते समय याचक की भीषण लोभवृत्ति भी उसके उत्साह को डिगा नहीं सकी है। परन्तु यह नायक का सौभाग्य ही है कि उसे अपने अनुरूप पत्नी और पुत्र प्राप्त हैं। इससे उसके पत्नी प्रेम और पुत्र प्रेम मंद नहीं पड़ पाए हैं। वह भारी हृदय से पत्नी को गणिका को तथा पुत्र को वश्य को बेच देता है। इस प्रकार उसकी दानवीरता व सत्य वीरता सापेक्ष बन गई है। वह कर्त्तव्यपरायण भी उतना ही है। अपने स्वामी कलुवा मेहतर के हाथों बिकने पर वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय अपने ऊपर नहीं रखता। नौकर का धर्म है स्वामी की आज्ञा का पालन, जिसका निर्वाह वह सूमरो की साज सम्भाल करके और मरघट पर कर वसूल करके करता है। वह नमकहरामी नहीं करता है—

यही मेरा है काम चुकूँ पहली मैं भी दाम करे क्या मेरा रजक तमाम।
मैं सकोच रखूँ नहीं किसी की मैं नहीं नमक हराम॥

और जब उसकी पत्नी उसके पुत्र रोहितास का शव जलाने आती है तब वह अपने कर्त्तव्य पर अडिग रहता है। उसे मरघट का कर चाहिए जो रानी के पास नहीं होता है। उसकी इस युक्ति पर कि चुपचाप शव-दाह कर ले, हरिश्चन्द्र उत्तर देता है—

दाग लग्या परगास देखकर धणी छुड़ाव घास धणी क मेरा ही बसवास।
बसवासघात नहीं करूँ नहीं यहाँ जल ले जा लाश।

और कर्त्तव्य की डोर से बंधकर वह अपनी पत्नी का वध करने के लिए उद्यत हो जाता है—

मारू डाकणको अबार, नौकरी से म्हू लाचार।
उठाई अब मारू तलवार ॥

उसका विश्वास है कि पाप और पुण्य आज्ञा देने वाले को लगते हैं आज्ञा पालक को नही—

म्हूण बळवा की सकू न टार, मुझको पातक नही नार।
हुक्म कळवा का सकू न टार।
मुझको पातक नहीं हुक्म मे पातक समझ ग्वार।

वह तो विप्र वेशधारी ईश्वर स कहता है कि मैं मतिमद नही हूँ और भक्षक (रानी) का अवश्य वध करूंगा—

वीप्र तुम सुनो नहीं मति मद,
भक्षकको नहीं छोड, मेरो नाम हरिश्चन्द।

राजा हरिश्चन्द का विश्वास है कि सत्य का निर्वाह प्राणो की बाजी लगाकर भी किया जाना चाहिए। उसके सत्य निर्वाह का प्रमाण इस प्रकार है—

सत्त नहीं छोड वचन प्रमाण रहेगा जब तक धड मे प्राण।
× × ×
तेरा सत्त प सेसजी सहे धरा का भार ॥
× × ×

और इसीलिए चालीस दिन पश्चात् भोजन बनाने जा ही रहा था कि एक ब्राह्मण आकर उससे भोजन मांगता है तो उसे सब कुछ देकर गगाजल पान करके सतोप कर लेता है—

तेरा रक्खा सरीर, पीत हू खाली गगा नीर
बनाग्रा भोजन गगा तीर।
ले लीज्यो सत छोड माइ जद ताई रहे सरीर ॥

राजा हरिश्चन्द शिकारी भी है पर वह शिकार इसलिए करता है कि उससे जनहित होता है। शूकर ने माली का उद्यान बिगाडा है इसीलिए वह उसे मार डालना चाहता है। एक राजा के दायित्व का निर्वाह करता है।

दृढव्रती राजा हरिश्चन्द पर समझाने बुझाने का कोई प्रभाव नहीं होता है। विश्वामित्र के समझाने पर भी वह बिना दान दिए जलपान नही करता है। उसका यह व्रत छूआछूत से भी प्रेरित है। मेहतर की नौकरी तो वह करता है पर उसके घर का अन्न नहीं खाता है। इसलिए वह अनुदिन कृश होता जाता है। उसकी कृशता व दुबलता इस सीमा तक पहुँच गई है कि वह एक पानी का घड़ा भी स्वय नही उठा पाता—

नीच घरां का उचा सके नहीं मुझको रानी न
भरा जद घड़ा र
घटे धरम सत उठ, ऊचे नहीं सरदा न

पर यह दुर्बलता उस समय नही दिखाई देती है जब रानी का वध करना होता है—

तरवार सूप द मुझ नहीं है देर रात्र

राजा हरिश्चन्द की नक्ति उसकी पत्नी है। उसस ही अभूतपूर्व आदर्श प्रस्तुत कर सका है। फिर भी उसम मा उमग से वह अपना सवस्व विश्वामित्र को दान कर देता रोहितास को यह तथ्य प्रकट नही करता है और न रान बेचने के लिए उद्यत होता है। य ही दुर्बलताए उस निरा मा बनने से बचा गई है। अपनी इन दुर्बलताओ म हरिश्चन्द अनुकरणीय बन गया है।

हरिश्चन्द की पत्नी रानी नाटक की नायिका है जा निर्वाह म अपने पति से दो कदम आगे है। उसके चरित्र अधिक है। नारी सुलभ कोमलता के कारण वह अपने पर्ि सकल्पो विकल्पो म जी रही है। इसलिए उसका चित्रण क और प्रभावपूर्ण है। वह राजा हरिश्चन्द्र की पूरक और शक्ति त्याग उसका भी त्याग है और राजा के सत्य निर्वाह म उसन दानशीलतावश राजा राजपाट छोड और परिवार को वेच हुआ पर रानी ने तनिक भी विरोध नही किया। इसके विपर साध्वी पतिव्रता स्त्रीरूप मे कहती है—

हाजर खडी आपकी नार हुक्म मुझ प करो।
पुत्तर और मुझको राजन बेच दाम इनका भरो॥

उसकी आस्थाएँ अडिग हैं—

क्या समझो मन माइ पतोजी, सिधू छोड दे कार
चल जद उलटी गगा ६
स स धरा नइ धर वेच दो चानू आपकी लार॥

क्योकि वह भाग्यवादिनी है। अत उसका दृढ विश्वास है कि प्रत्ये भाग्य भोगना ही पडगा—

ज्यो लिख दिया बिधाता मटता नहीं सुण भरतार।

उसका भाग्यवाद कर्माधृत है—

दुख सुख भोग उतना जतना लख्या भाग करतार
भोगना पड करम अनुर

अत विवेक प्रेरित होकर वह प्रश्न करती है कि वह पतिव्रता स्त्री है फिर भी उसका ऐसा म न्य क्या कर है ?

म्हू पती करता नारकदाता थ क्यू लिखी ललार।

वह तो परम भक्तिन भी है। सभवत उसका विश्वास है कि भक्त पर सकट आते ही रहते हैं—

भगती करता विपत पडी जद आई आपकी लार।

इस विश्वास पर वह जीवित है कि ईश्वर भक्तो की रक्षा करने के लिए आते हैं। अत भक्त को सत्य का माग कभी नही छोडना चाहिए—

कत सत को मत दीज्यो छोड, विपत को जाण पे।

भगत भगवत दया कर आय, खबर ले प्राण की।।

सत्य माग पर चलन के लिये उसके सामने प्रहलाद आदि के आदश प्रस्तुत हैं।

धम मा आचरण का एक सकीण रूप भी है जिसस वह बधी हुई है। छुआछूत म विश्वास रखने के फलस्वरूप वह न वश्या के घर का अन्न जल ग्रहण करती है और न अपने दुबल पति के सिर पर उसके स्वामी मेहतर का जल का घडा रखवाती है पर उसम सूभबूभ है अत वह हरिश्चन्द को युक्ति बताती है कि पहल मरे घड को खाली कर लो और नदी मे डुबकी लगाकर सिर पर रखे घडे को भरकर बाहर निकल आओ। जल मे घडा अल्प भारी होन से आपको कठिनाई नही होगी—

नीर भरा घडा ऊँच नाइ, क्या कीजे तदबीर

घडा ज्यो भरा ढोळ दो तीर।

जळ क भीतर भार रहे नहीं ऊँचो घडा भर नीर।

यही सूभबूभ उसको अपन पति से रोहतास के दाह के अवसर पर यह कहल वाती है—

धणी देखने आवे नहीं, पुत्र दीजिए दाग।

रानी माता की ममता और कोमलता यह नहीं देख सकती कि उसका पुत्र ग्रीष्म की भीषणता मे पानी क लिए तडप कर मर जाये। अत गाडीवान से अनुनय विनय करक रोहितास को गाडी म बिठाती है। और जब वह तो वेश्या द्वारा खरीद ली जाती है और पुत्र बजनाथ वश्य द्वारा तब पुत्र वियोग से वह व्यथित रहती है। वह सेठ स प्राथना करती है कि मुझे वश्या स खरीद कर मेरे पुत्र से मिला दो—

मिलावो आप पुत्तर स जार।

पुत्र वियोग म तो वह जीवित भी नही रहना चाहती है। वह अपने डाकिन होने के मिथ्यारोप का प्रतिवाद करती है पर पुत्र शोक से विह्वल होकर अपने पति स प्राथ ।। करती है—

उडायो सोस मार तलवार, मत मतना डरो ।
पुत्तर को दुक्ख सह यो नहीं जाय, थार मुझ प करो ॥

वह भ्रारम पक्ष और लोक पक्ष दोनो पर दृष्टि रखती है। अपने पवित्र आचरण और सत्य निर्वाह के उपरान्त भी जब हाकिन हान क कलक से लाछित हो जाती तब अपनी निराश्रयता म परमात्मा का आश्रय खोजती है—

भ्रजी थारो चत्त में दया भ्रासरो थारो।
ऊ झूठो लाग कलक नहीं म्हारो सारो॥

आँचल मे दूध और आँखो म पानी लेकर चलने वाली रानी का चरित्र नाटककार की कुशल कला का प्रतीक है। उसका पातिव्रत पुत्र प्रम कत्तव्य भावना, विवेक और सत्यनिष्ठा अनुकरणीय है। स्वय नाटककार ने उसके सम्ब घ म नाटकीय शली स हटकर अन्त म इस प्रकार का मत व्यक्त किया है—

रानी सुणो पुकार, धन्य हो ईश्वर तुम करतार,
धन्य है यह पतिवरता नार।
मदन सत्य राणी का सत प दशन दीना भ्रार।

उसमे नारी की कोमलता है जो किसी भी प्रारभिक विपत्ति पर उसे विचलित कर तो देती है पर दूसरे ही क्षण उसका विवेक पति भक्ति पुत्र प्रम आदि उसे सँभाल लेते हैं। पुत्र ने पिता के राज्य त्याग का समाचार दिया और वह 'राज घरो के चन छूटने की कल्पना स सिहर उठती है और रोने लगती है पर दूसरे ही क्षण कह उठती है—

सुनो पुत्तर रोहितास सत्त सू खडा जमीं असमान
अमर हो रहे चन्द्रगण भान।
सत छोड यों पत जाय पती की नस्ते करके जान।

रोहितास

रोहितास (रोहिताश्व) हरिश्चद का पुत्र है। वह विवेक सम्पन्न, सत्य निष्ठ और आज्ञाकारी पुत्र है। उसके पिता विश्वामित्र को सवस्व दान कर आये हैं और पारिवारिक चिन्ता से युक्त हैं। रोहितास उन्हे उदास देखकर पितभक्त पुत्ररूप मे उन्ह आश्वस्त करता है और बिकने को उद्यत हो जाता है—

क्यू चत राखो उदास, बिकूगू चाल आपकी लार।

और अपनी माता को उसी उत्साह से कहता है—

छोड क चलो मात धन धाम।
पिता म कर दीना पुण्य तमाम।

जब नारी की कोमलता क युक्त माता तनिक विचलित होती है तब वह उसे धय बधाता है—

घास घरां की छूटी माता हो नाहीं उदास।
पिता का पुण्य चद परगास।
चत्त फुन्द नहीं करो मात जी अरज करे रोहितास।

उसका यह धय माता से पृथक होकर बिकने की कल्पना से टटता सा दिखाई देता है, पर इसका हेतु उसका अपना सुख नहीं है अपितु माता के विरह दुःख की कल्पना ही है। अत विश्वामित्र से उसकी प्रार्थना होती है कि मुझे अपनी 'मात की लार (साथ)' बेचना क्योंकि मेरी माता रोकर मर जायेगी—

माता रोऊ मरगी म्हारा मुझे पड नहीं चन।

रोहिताास गुणवान दीखता है। अत सेठ बजनाथ उसे सहर्ष खरीद लेता है। यहाँ तक कि अपने पुत्र के स्थान पर ही उस पर वत्सलता प्रकट करता है। कुशल भृत्य रूप म वह अपने स्वामी का आज्ञापालक है। अत उसका धय होता है कि प्रत्येक आदेश का पालन अविलम्ब हो—

बजनाथ ने कहा पुसब तुम लाओ करो न देर
पुसब की आग्या दीजे अब।

उसकी कष्ट सहिष्णुता अद्वितीय है। वह अपने कष्ट का कम ध्यान रखता है और अपने माता पिता क कष्टों की उसे अधिक चिंता रहती है। उसे सप काट खाता है, मत्यु उसके सामने खडी है पर उसको अपनी चिता नहीं है। उसको चिता है—

आंख पुत्तर नहीं खोल तेरो पिता नहीं है पास।
बंधाव कौन मात बिसवास।
हाई काळ तेने बुरा किया माता रहे उदास।

उसकी मत्यु अति सन्निकट है। विष लहर से वह अचेत पडा होता है कि माता के क्रन्दा की भनक उसे सुनाई पडती है और वह निर्वाणोन्मुख दीपशिखा के अतिम दीपशिखोत्कर्ष के समान शक्ति भरकर बोल उठता है, पर तब भी उसका मात प्रेम और विवेक उसके साथ होता है वह स्वचिन्ता से मुक्त है—

अस्यो सोच मत करो मातजी, यह करमों का फर।
मनुस का ही काळ है घर।
अब बोलन की सक्ती नाइ लिया काळ न घेर।

वह विचारो से तो काफी परिपक्व व प्रौढ लगता है पर अवस्था से काफी छोटा है। अत अयोध्या मे काशी जाते हुए उसका कोमल वपु कुम्हला जाता है वह घबरा जाता है—

भाडा डूबे नाहीं तुम्हारा घबराया रोहितास।

रोहितास का चरित्र भी नायक का पूरक और प्रेरक बनकर चित्रित हुआ है। वह व्यक्ति धन्य है जिसको एसे पत्नी और पुत्र मिले हैं—

कथोपकथन

पद्य शैली मे लिखे गये इस लोकनाटक की तानो के तीन प्रकार मिलते हैं। सामान्य तानें जिनमे दो वक्ताओ के बीच कथोपकथन होता है। तान धूम की जो एक प्रकार के स्वगत कथन हैं और नाली तान भी एक प्रकार के स्वगत कथन ही हैं। पर पहली तान का उपयोग आत्माभिव्यक्ति के लिए होता है और उसका उपयोग तीव्र अनुभूति के क्षणो मे होता है। नाली तान कथानक के अगो को जोडने के लिए प्रयुक्त होती है और नाटक की कथा को सुस्पष्ट बनाती है। 'हरिश्चद खेल' मे तीनो प्रकार की तानें मिलती हैं। वैसे तो सारा नाटक ही मार्मिक प्रसगो से भरा पडा है पर जहाँ मार्मिकतम प्रसग है वहाँ धूम की तानें प्रयुक्त हुई हैं। उदाहरणस्वरूप रानी के एकमात्र आश्रय रोहितास की सर्पदश से मृत्यु हो चुकी है और उस पर यह कलक लगाया जाता है कि वह श्रेष्ठि पुत्र को डाकिन बनकर खा गई, परिणामस्वरूप उसका वध अपने पति द्वारा किया जाने वाला है। ऐसे अवसर पर उसकी व्यथा फूट पडती है—

> अजो थारो चित मैं दया आसरो थारो।
> वह झूठा लगे कलक नहीं म्हारो सारो।
> तुम मारो नहीं भरतार कहूँ क्या तोसे।
> अब थारो सह्यो नहीं जाय पुत्र दुख मोसे।
> बन खड मैं लग ज्या आग नीर ले आऊ।
> पानी मैं लागी आग कहा मैं जाऊ।
> अब वचन पीया को दुख सयो नहीं जावे।
> या तुम बिन खाविन्द कौन सहाय पे आवे।

सामान्य तानो मे दोनो पात्र समवाची है। पात्रानुकूलता और घटना प्रवाह को लेकर चलने वाली तानें चरित्र चित्रण मे भी सहायक हैं।

उद्देश्य

हरिश्चन्द नाटक का मुख्य उद्देश्य सत्य की प्रतिष्ठा करना है जिसका आद्यान्त निर्वाह किया गया है। गौणत यह नाटक पारिवारिक आदर्शों त्याग और तितिक्षा की भी प्रतिष्ठा करता है। भक्तिदृढ़ता और ईश्वर विश्वास जिस सीमा तक दिखाया गया है वह भक्ता का सर्वस्व है। इस सीमा पर पहुचने पर ईश्वर की प्राप्ति निश्चित है। सत्य की प्रतिष्ठा व्यक्तिपरक और परिवारपरक दिखाई गई है। अपने प्राण जाहि पर वचन न जाही का आदर्श प्रस्तुत करके नाटककार ने सत्य प्रेम का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। राजा हरिश्चद्र के उपाख्यान का यह आदर्श जहाँ साहित्यकारो को सर्जना प्रेरणा देता रहा है वहाँ महात्मा गाधी जैसे अनेक व्यक्तियो को भी इसने प्रेरित किया है।

पुत्तर तेरा डस तिया काठ भुजग
अग को लीलो पड गयो अग ।

पर ३६ मात्राओ के इस छ द का प्रयोग नाटक मे अत्यल्प हुआ है ।

भाषा

इस लोकनाटक की प्राप्ति प्रस्तुत लेखक को बूदी (हाडौती क्षेत्र) से प्राप्त हुई है । अत सहज कल्पनीय है कि इसकी भाषा हाडौती होनी चाहिए । नाटक की भाषा पर भाषा वज्ञानिक दष्टि से दष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इसकी भाषा हाडोती और खडीबोली का मिश्रण या खिचडी रूप है जिसमें नाटककार का झुकाव हाडौती की ओर है । उस समय खेलो में जो भाषा स्थान बनाती जा रही थी उसमें तत्तत स्थानीय बोलियो के साथ खडीबोली का भी प्रवेश हो रहा था । इसलिए यह मिली जुली भाषा लोकनाटको में अपना स्थान बना रही थी । हाडौती की ओर झुकाव होने से उसके मुहावरे इसकी भाषा में आये हैं और नामपद ओकारान्त बन गये हैं—

वह झूठा लागै कलक नहीं म्हारो सारो ।

यहाँ 'म्हारो सारो नहीं' मुहावरा आया है और म्हारो तथा सारो दोनों ओकारान्त हैं । पर कहीं इसी नाटक में म्हारो के स्थान पर 'मेरा' भी प्रयुक्त हुआ है । भूतकालीन क्रिया (हि०) का दीना (हा०) रूप भी मिलता है ।

कहीं-कहीं तो स जसे ब्रज भाषा के प्रयोग भी मिल जाते हैं । परन्तु ऐसे प्रयोग अत्यल्प हैं । संस्कृत के अनेक शब्द तो अपने तत्सम रूप में गहीत हुए हैं यथा—पातक मति, मस्तक पर जो हाडौती की प्रकृति से मेल नही खाते हैं उनके अर्धतत्सम रूप ही अपनाये गए हैं—वीप्र, धरम अगति आदि ।

फारसी के शब्द—दाग, हुकम आदि भी हाडौती की प्रकृति से मिलकर आये हैं ।

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से अभिव्यक्ति सामर्थ्य में वद्धि हुई है उसकी शब्दावली में अनुरणनात्मकता भी है—

भनी नण स नागी बरसना चणमण-चणमण मोर

उसकी भाषा में प्रसाद गुण सवत्र व्याप्त है । वह सरल, स्पष्ट और सगीता नुकूल होने से इन गेय नाटको के अधिक अनुकूल है ।

इसकी भाषा में अलकारों का सहज ग्रहण हुआ है । कहीं-कहीं भाव भिव्यक्ति की दष्टि से अलकारों की झड़ी सी मिलती है—

मीन ज्यंह जल बाहर पटकी लेगी खूगडा खोद ।
मणा जिन वणो गयो मन मोद ।
पुत्तर बिना हो गयो अधेरो सूना कर गया गोद ।

पर गया सूनी गोद लाल बिन हो गयो घोर अंधार।
गाय को बछड़ो लीनू मार।
भटका आव लाल बरसता बादल नना धार।
वन बना गज फीका फीका सूर बना बागात।
चन्द बिन फीकी लाग रात।
दो कोडी की नार कत बिन ज्यू बेटा बिन मात।
तरवर फीका लाग पात बिन, बिन चूड़ला बिन हाथ।
चूप बिन फीका लाग दांत।

अभिनय

हरिश्चन्द लीला का अभिनय लोक-मचो पर होता है जिनके लिए एक चबूतरा या तख्त पर्याप्त होता है। पर्दे भी विशेष नही होने हैं और न मच को वातावरणानुकूल बनाने के लिए अन्य किसी प्रकार की मच सामग्री का उपयोग होता है। ऐसे पर्दे नही हाते जिन पर वन खण्ड, राजप्रासाद आदि के दृश्य चित्रित हो। फिर भी छोटी मोटी वस्तुओं को लाकर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया जाता है। ऐसी अवस्था मे भी मच पर रोहितास के शव को चिता पर दिखाना और चिता के बह जाने की बात मोने दनकी के गले उतरवाना ऐसा आयोजन है जो कठिन प्रतीत होता है। गगा तट से जल भरने की बात भी दर्शक को कल्पना के आधार पर ही ग्रहण करनी पड़ेगी।

नाटक शास्त्र मे चिता व शव दाह के दृश्य दिखाना वर्जित है पर रग मच पर रोहितास का शव अधिक प्रतिकूल इसलिए नही होगा कि वह किसी द्वारा मारा नही गया है—रक्तपात जसा प्रसग नही है। सत्य व्रत के निर्वाह क प्रसग मे शोक को और तीव्र करने का एक दृश्य मात्र है। दूसरे यह दृश्य सुखद अवसान को प्राप्त होता है। अत अन्तिम रूप से इसका वीभत्स प्रभाव न पडकर दृश्य समष्टि और घटना समष्टि म यह दर्शक के मन पर पडनेवाले अतिम प्रभाव को अधिक गहरा बनाता है।

नाटक का रस—करुण रस आरम्भ से ही दर्शक का ध्यान आकृष्ट करके चलता है। घटनावली का क्रम दर्शक म कही पर भी रस शैथिल्य नही आने देता। घटनाएँ इतनी मार्मिक और इतनी आकर्षक हैं कि दर्शक प्रत्येक प्रसग मे रमता भी है और आगे क्या होगा—यह जानने को उत्सुक भी रहता है। भावों की सघनता और तीव्रता इसे सँभालकर चलने के लिए पर्याप्त है, फिर कथोपकथन (तानें) कितने ही शिथिल क्या न हो।

हरिश्चद के कथोपकथन भी अभिनय की दृष्टि से अत्यत आकर्षक हैं। प्राय वीररस या शृङ्गाररस के अभिनय मे लोक अभिनेताओ को अग सचालन

के अधिक अवसर मिलते हैं। क्योंकि उनका अभिनय आंगिक, वाचिक और आहार्य ही होता है (सात्त्विक की ओर उनका ध्यान नहीं जाता है)। इस नाटक के जोशपूर्ण कथनों के अभिनय में अभिनेता को कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। इसमें आहार्य के लिए पर्याप्त गुंजाइश है और आंगिक तथा वाचिक भी अपना महत्त्व रखते हैं। अश्रुप्लावन (सात्त्विक अभिनय) के अभाव में अभिनेता अपनी आवाज को गिराकर और अंग संचालन में अशक्तता दिखलाकर भी अभिनेता इसका सफल अभिनय कर लेते हैं।

दर्शक की सुपरिचित कथा का अभिनयकाल भी लम्बा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कोई भी लोकनाटक ५-६ घण्टे बिना समाप्त नहीं होता है। २ ३ घण्टे की सीमा तो साहित्यिक नाटकों की होती है। ऐसे नाटकों की नहीं जो संगीत और काव्य का एक साथ आनन्द प्रदान करते हैं और जिसके दर्शक कृषिकार्य से निवृत्त होकर काफी फुर्सत में होते हैं तथा जो राजा, सामंत और भक्त की जीवन-पद्धति को देखने के लिए पर्याप्त संस्कार बचपन से ही बना लेते हैं।

इस प्रकार यह लोकनाटक अभिनय की दृष्टि से एक सफल नाटक स्वीकार किया जा सकता है।